वर्ष ८, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

फाल्गुण पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूम.नन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		१६१
२.	महात्मा इब्राहीम हाशम [ले० श्री ला० नूनकरणदास जी		१६२
३.	वसन्त विभोर (कविता) [रचियत्री श्रीमती ब्रज कुमारी "प्रभाकर"		१६६
४.	अयोध्या काण्ड में क्षेपक [ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी. ए.		१६६
५.	बनी तो बिगारे मत (कविता) [रचियता श्री पं० उमाशंकर जी द्विवेदी		१६६
६.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		१६९
७.	तुलसीकृत रामायण का आकाश वाणी प्रकरण [ले० श्री महावीर प्रसाद जी बजरंगबली ...		१७४
८.	श्याम छवि (कविता) [रचियता श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी		१८१
९.	भगवान क्यों नहीं मिलते [ले० श्री प्रेम-पथ-पथिक		१८१
१०.	चित्रकूट [ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी. ए.		१८२
११.	पुराण गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी		१८७
१२.	प्राप्ति स्वीकार		१९१
१३.	भजन		१९१

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	५१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	५२)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुण पूर्णिमा, मार्च १९३४ | अंक ६ पूर्ण संख्या ९०

वेदोपदेश

ओं अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ-वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

जो उद्गीथ है वह ओंकार है, जो प्रणव है वह उद्गीथ है, यह उद्गीथ और प्रणव निश्चय करके ईश्वर हैं क्योंकि उक्त दोनों शब्द ही को कथन करते हैं ॥ १ ॥

ओं आत्मानमनन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्न प्रमत्तो ह्यासो ह-यदस्मै स कामः समृद्धचेत । यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेती ॥ २ ॥

मन को पूर्ण रीति से निरोध करके परमात्मा का स्तवन करे, समाहित चित्तवाला अभ्यास जो इस जिज्ञासु के लिये रुचिकर हो वही इसकी कामनाओं को बढ़ाता है, क्योंकि जिस कामना से स्तुति की जाती है वही कामना उसका लक्ष्य होती है ॥ २ ॥

ओं आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ३ ॥

यह ब्रह्मवित् पुरुष निश्चय करके कामनाओं का पूर्ण करने वाला होता है जो इस अविनाशी ब्रह्म की उपासना करता है ॥ ३ ॥

ओं य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्य।
शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ ४ ॥

जो आदित्य में स्थिर होकर उसका अन्तरात्मा है, जिसको आदित्य नहीं जानता, आदित्य जिसका शरीर है और आदित्य के भीतर वर्तमान होकर जो उसका नियमन करता है वही अन्तर्यामी परमात्मा है ॥ ४ ॥

ओं आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन्कस्यकामाय शरीरमनुसञ्ज्वरेत् ॥ ५ ॥

जब पुरुष परमात्मा को भले प्रकार जान लेता है। मैं परमात्मा से भिन्न नहीं हूं अर्थात् वही मेरा आत्मा है तब वह किसी सांसारिक वासना के लिये सन्तप्त नहीं होता ॥ ५ ॥

ओं मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ ६ ॥

ब्रह्म शुद्ध मन से ही जाना जाता है। इसके जानने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है। और जो ब्रह्म में नानापन देखता है वह जन्म मरण को प्राप्त होता रहता है ॥ ६ ॥

महात्मा इब्राहीम हाशम*

(ले० श्री ला० भूनकरणदास जी)

गतांक से आगे।

एकबार एक गृहस्थ ने दश हजार मुद्रा की थैली इब्राहीम के पास रख कर स्वीकार करने की प्रार्थना की। महात्मा ने उत्तर दिया कि—"गरीब के पास से एक पाई भी मैं लेना नहीं चाहता।"

धनवान ने कहा कि—"मैं गरीब या निर्धन नहीं हूं। मेरे पास तो पुष्कल धन है।

इब्राहीम ने कहा—कि भाई तुम्हें और धन की इच्छा तो है ना?

धनवान् ने कहा—कि हां।

इस पर महात्मा ने कहा कि धन होते हुये धन की इच्छा नहीं गई उसको मैं सब से अधिक गरीब मानता हूं।

कहते हैं कि एकबार महात्मा इब्राहीम से लगातार चालीस दिन तक स्वस्थ चित्त से प्रभु की उपासना नहीं बन सकी। इससे उनका चित्त अत्यन्त वेदना से जलने लगा। कारण ढूंढने से उन्हें मालूम हुआ कि बसरा में मैंने एक फल एक मनुष्य को खिलाया वह फल मेरा नहीं था। परन्तु

* गुजराती से अनुवादित

मैंने उसे अपना बनाया था। इस पाप से मेरा चित्त अस्वस्थ हो गया है। और उपासना के समय एकाकार वृत्ति नहीं होती। अतएव यह वापिस बसरा गये और इस फल का जो स्वामी था उसके पास जाकर यह बात निवेदन करी तथा यह फल बखशवा कर हलाल कराया इस प्रकार इस फल सम्बन्धी पाप में से निर्दोष बने तब उन के चित्त को शान्ति प्राप्त हुई।

एकबार महात्मा इब्राहीम घूम रहे थे। उन्होंने रास्ते में एक बेहोश पड़ा हुआ शराबी देखा। शराबी अस्त व्यस्त कपड़ों से बेहोश पड़ा हुआ था। और उलटी होने के कारण उसका मुँह भी खुला हुआ था और इस गंदे मुंह पर मक्खियाँ भन भना रही थीं। साधुओं के अन्तःकरण अत्यन्त दयालु होते हैं। इस नशेबाज पर भी महात्मा को अत्यन्त दया आई। और पड़ोस में से जल लाकर उन्होंने उसका मुंह धो कर साफ किया। और कहा कि अरे भाई जिस मुख से पवित्र प्रभु का नाम लिया जाता है। उस मुख को तूने इतना गंदा किस लिये किया है? इतना कह कर महात्मा तो वहां से चले गये। परन्तु जब उस शराबी को होश आया और किसी ने उससे यह उपर की बात सुनाई कि महात्मा इब्राहीम ने तेरा मुँह धोया है और यह वचन कहे तब उसको बड़ी शरम आई। और तब से उसने सदा के लिये शराब छोड़ दी। इस बनाव के बाद इब्राहीम ने ऐसे आकाश वाणी सुनी कि हे इब्राहीम तैंने तो मेरे लिये एक आदमी का मुँह ही थोड़ी देर में धोकर साफ किया है। पर मैं तो तेरे अन्तकरण को नित्य धोकर साफ करता हूँ। एकबार महात्मा इब्राहीम सड़क पर चले जा रहे थे। कि उनसे चौकीदार ने पूछा "तू कौन है" महात्मा ने उत्तर दिया। गुलाम-

सिपाही ने पूछा। कहाँ रहता है?

महात्माने जवाब दिया कबरिस्तान में।

सिपाही को यह उत्तर मखौल जैसा लगने के कारण तथा एक मैला कुचैला मनुष्य ऐसा उत्तर दे इससे क्रोधित हो कर उसने महात्मा को दो चार सख्त डंडे लगा दिये। परन्तु पीछे उसे मालूम हुआ कि यह तो महात्मा इब्राहीम हैं तब उसने उनके चरणों में पड़ कर क्षमा माँगी।

महात्मा बोले-तैंने जो कुछ किया है। उस से तो उलटा मुझे लाभ ही हुआ है। इससे मैं ने तो तुम्हारे ऊपर क्रोधित न हो कर तुम्हारी दुर्गति की इच्छा न करके तुम्हारा भला ही चाहा है तथा सिपाही को इस बात का मर्म समझा कर कहा कि भाई सब आदमी प्रभु के दास ही हैं। उसी तरह मैं भी एक दास हूँ। तथा शहर में से नित्य थोड़े २ करके मनुष्य कबरिस्तान मे चले जा रहे हैं। इस प्रकार सब आदमियों की तरह इस गुलाम का भी आखिरी ठिकाना तो कबरिस्तान ही है। मैंने कोई असत्य नहीं कहा था। परन्तु तेरी समझ का फेर था।

एकबार वह नाव में बैठे थे और उनके पास एक दुष्ट मनुष्य बैठा हुआ था। इस दुष्ट आदमी ने उनका गला पकड़ कर उन्हें पानी में फैंक दिया। तब वह हाथों से तैर कर किनारे पहुँचे इस अवस्था में भी उनका हृदय शान्त तथा मुख प्रफुल्लित था।

महात्मा इब्राहीम ने एक बार एक फकीर को अपनी फकीरी तथा गरीबी के लिये खेद करता हुआ देखा। यह देख कर महात्मा ने समझा कि इस मनुष्य ने फकीरी बिना मूल्य ही प्राप्त करली मालूम होती है। इससे इसे फकीरी अच्छी नहीं

लगती। मुफ्त के माल का ऐसा ही हाल होता है ?

उस फकीर ने पूछा कि-कि क्या फकीरी भी बिकति है ?

इब्राहीम ने कहा-हां ! मैंने बलख का राज्य देकर फकीरी ली है।

एकबार महर्षि इब्राहीम से किसी ने कहा कि तुम राजा होते हुये भी ऐसी किस विपत्ति में आ पड़े कि जिससे इतना बड़ा राज्य छोड़ना पड़ा ?

इब्राहीम ने कहा:-मैं एक दिन अपने सिंहासन पर बैठा हुआ था और मेरे सामने एक शीशा टंगा हुआ था मैंने उसमें मेरे राज महलके स्थान पर श्मशान देखा वहां मैंने एक भी संगी साथी खड़ा हुआ नहीं देखा मेरा त्याग करके वह सब चले गये थे और मानों मैं इकला रह गया हूं ऐसा भान हुआ; मुझे दिखाई दिया कि पार करने के लिये बड़ी भारी बाट पड़ी हुई है परन्तु रास्तेमें खाने के लिये कुछ भी सामान नहीं है। और मैंने एक महान सिंहासन के ऊपर एक तेजस्वी न्यायाधीश को बैठा हुआ देखा अपनी सफाई करने के लिये मैंने बहुत कुछ विचार किया परन्तु इस समय काम आवे ऐसी एक भी दलील मुझे नहीं मिली। इससे मैं बहुत ही चकराया। मेरे मन में राज्य से वैराग्य हो गया और अन्त में मैंने सब कुछ छोड़ कर फकीरी धारण करली।

एक दिन एक आदमी ने महात्मा इब्राहीम के पास आकर कहा कि महात्मा जी ! मैंने बहुत पाप किये हैं। मुझे ऐसा रस्ता बताओ कि जिस रास्ते पर चलने से मेरा भला हो ?

इब्राहीम बोले-जब तुम पाप करो तब तुम ईश्वर का दिया हुआ अन्न नहीं खाना।

उसने कहा-ईश्वर सब की आजीविका चलाने वाला है इसलिये इसे छोड़ कर कहां से आजीविका प्राप्त करूं ?

इब्राहीम बोले-जो तू इतना समझता है कि ईश्वर ही आजीविका चलाने वाला है तो तू बता कि ईश्वर का दिया हुआ तो खाऊं और उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलूं यह किस प्रकार योग्य कहा जाय। इसलिये जब तुझे मालिकों के मालिक की आज्ञा के विरुद्ध चल कर पाप करना हो तो ईश्वर के राज्य के बाहर जाकर ही करना चाहिये। क्या तो उसका दिया हुआ अन्न-फल का त्याग करदे या उसके राज्य में रह कर पाप करना छोड़ दे।

उस आदमी ने कहा-परन्तु ईश्वर के राज्य को छोड़ कर तो जाऊं ही कहां ? चारों तरफ उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम ऊपर नीचे सब जगह ईश्वर का राज्य है।

इब्राहीम बोले-तो फिर ईश्वर के राज्य में रहना और उसकी आज्ञा के, विरुद्ध चलना यह क्या मनुष्य को शोभा देता है ? तो भी जो पाप करना हो तो जहां कहीं ईश्वर दिखाई न दे वहां जाकर करना चाहिये।

उस आदमी ने कहा-परन्तु यह किस प्रकार हो सके प्रभु तो सर्व व्यापक और सर्वज्ञ है।

इब्राहीम-तो फिर यह योग्य नहीं कि उसकी पूदान की हुई जीविका ली जाय। क्या यह योग्य है कि उसके राज्य में बसना और उसी के नेत्रों के आगे पाप करना ? "परन्तु ठीक, चल, तू एक कहना कर। जब तेरी मृत्यु आ उपस्थित हो, तब उसे कहना कि एक घड़ी ठहरजा, और मुझे पश्चाताप करने के लिये थोड़ा सा समय दे।

उस मनुष्य ने कहा-'अजी ! ऐसा किस तरह बने ? क्या मौतने कभी किसी को भी एक पल जितना समय दिया है।

कि तो मुझे देगी ?

इब्राहीम–यदि ऐसा है, तो मरने से पहिले ही पश्चात कर लेना चाहिये।

उस मनुष्य ने कहा–ऐसा मुझ से हो नहीं सकता।

इब्राहीम–तो फिर न्यायधीश के आगे क्या जवाब देगा ? यह अभी से तय्यार करले। जब तेरे लिये यह हुक्म हो कि इस पापात्मा को नरक में ले जाओ तो तू इन्कार कर देना कि मैं तो वहां नहीं जाता।"

उस आदमी ने कहा–नहीं ! नहीं यह तो नहीं कहूंगा यदि ऐसा कहूं तो मेरे प्राण भी पकड़े जांय।

इब्राहीम–"तो फिर अभी से ऐसा निश्चय करले कि अब से आगे मैं पाप ही नहीं करूंगा।

पहला मनुष्य–"आपने जो कुछ कहा वह यथार्थ है।"

यह उपदेश सुन कर वह आदमी अपने पापों के लिये बहुत पश्चात्ताप करने लगा और फिर तमाम जीवन भर उसने पाप नहीं किये।

एक मनुष्य ने महात्मा इब्राहीम से पूछा कि महात्मा तुम अपने साथ स्त्री क्यों नहीं रखते ? उन्होंने कहा। 'कौन स्त्री मेरे जैसे अन्न वस्त्र हीन पुरुष को पसन्द करेगी ?" मेरी चले तो मैं अपना शरीर भी छोड़ दूं। तो कहो दूसरे एक और मनुष्य का भार मैं किस प्रकार वहन कर सकूंगा ? और जो कदाचित मैं अपना स्वतंत्र जीवन छोड़ कर दूसरे के पराधीन रहना स्वीकार भी करूं तो हम दोनों ही की दुर्दशा हो न ?

एक बार किसी ने महात्मा इब्राहीम से पूछा कि "मैं प्रभु से नित्य प्रार्थना करता हूं परन्तु वह मेरी बात क्यों नहीं सुनते ?

इब्राहीम–मात्र प्रार्थना बोलने से या सिर नवाने से क्या बने ? एकाग्रता पूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये। तू उसके भेजे हुये पैगम्बरों को तो जानता है, परन्तु उनके बताये हुये रास्ते पर चलता नहीं, धर्म ग्रन्थ को पढ़ तथा सुन कर भी तू उसके अनुसार अपना आचरण बनाता नहीं, प्रकाश, हवा इत्यादि ईश्वरीय दान तो खूब पहर लेता रहता है परन्तु उसके बदले उसका उपकार तक तू मानता नहीं, प्रभु के भक्तों की मदद से होती है यह तू मुंह से कहता है परन्तु स्वामी भक्त बनता नहीं, पापियों के लिये तो नरक ही है यह जानता हुआ भी तू उससे बचने की चेष्टा करता नहीं, तू जानता है कि अवगुण और शैतान यह तेरे कट्टर शत्रु हैं, परन्तु तो भी उनके साथ शत्रुता न रख कर उलटा मित्रता ही रखता है, तू यह जानता है कि मेरे लिये मृत्यु तो आवश्यक ही है। तो भी तू मौत के लिये कुछ भी तय्यारी नहीं करता। तैने अपने माता, पिता, मित्र और बालकों को अपने हाथ से कबर में सुलाये हैं फिर तू इस संसार में से जरा भर भी ज्ञान क्यों नहीं लेता ? तू स्वयं तो पाप प्रपंच में लगा रहता है परन्तु दूसरों को नाम धरा करता है ! तो अब तू ही कह, तुम्हारे जैसे मनुष्य की प्रार्थना प्रभु किस वास्ते सुने ?

इन महात्मा के वचनामृत

१. प्रभु का ही सदा स्मरण करो। मनुष्यों की आशा छोड़ दो।

२. तूने जिन (धन सद्गुणादि) को कैद कर रखा है। उनको छोड़ दे, और जिन को (क्रोध, अज्ञान, लोभ, मोहादि शत्रुओं को) स्वतन्त्र कर रखा है। उन्हें कैद कर।

३. इस संसार की यात्रा के लिये मैं चार

प्रकार की सवारी रखता हूं। (१) जब शान्ति का प्रदेश आजाता है, तब कृतज्ञता रूपी सवारी पर चढ़ता हूं, (२) पूजन अर्चन का प्रदेश आता है, तब प्रभु प्रेम रूपी सवारी का उपयोग करता हूं, (४) विपत्ति का प्रदेश आने पर सहन शील रूपी सवारी को काम में लाता हूं (४) पाप के प्रदेश को उल्लंघन करने का अवसर आने पर पश्चात्ताप रूपी वाहन का उपयोग करता हूं।

(वसन्त विभोर)

(रचयित्री श्रीमती व्रज कुमारी 'प्रभाकर')

प्राची दिशि अरुणिमा जागी,
कू कू कोयल कुहुकन लागी।
तिमिर निशा पश्चिम को भागी,
लख वसन्त का रम्य विभोर ॥१॥

कानन कुंज रश्मि रवि पुंज,
पुष्पलता द्रुम अलि गण गुंज।
मिल कर करते प्रमुदित कुंज,
घोषित रंग मदन टंकोर ॥२॥

कुछ मलिन्द के आये कुन्दपर,
पी मकरन्द बहायें इन्दु कर।
जनु सप्त सिंधु सुहाये बिन्दुपर,
करत कला कुल 'व्रज' चहुं ओर ॥३॥

मलिन्द—भौंरा
मकरन्द—रस
कुन्द—चम्पा

अयोध्या काण्ड में क्षेपक

[ले० पं० मार्कण्डेय जी मिश्र]

क्षेपक शब्द का अक्षरार्थ है 'फेंकने वाला' परन्तु आज कल क्षेपक शब्द हिन्दी में 'फेंके हुए' अर्थात् प्रक्षिप्त अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में ग्रन्थ का वह अंश प्रक्षिप्त कहाता है जो मूल लेखक द्वारा न लिखा हो वरन किसी अन्य मनुष्य ने कथा पूर्ति अथवा कथाविस्तार के लिये अपनी रचना को मूल ग्रन्थ में सन्निविष्ट कर दिया हो और स्वयं लुप्त रहे।

गोसाईं जी की रामायण के बालकाण्ड में गङ्गावतरण की कथा तथा लंका काण्ड में महिरावण तथा सुलोचना के सती होने का वर्णन क्षेपक है। ऐसे ही अन्यान्य काण्डों में क्षेपकों का समावेश पाया जाता है परन्तु अयोध्या काण्ड में उनका प्रायः अभाव है। अयोध्या काण्ड में गोसाईं जी ने एक मर्यादा का पालन किया है और दिखा दिया है कि कवि यदि चाहे तो नियत मर्यादा पालन कर सकता है। अयोध्या काण्ड में प्रत्येक चौपाई आठ पंक्ति की है। प्रत्येक आठ पंक्ति की चौपाई के अन्त में एक दोहा है परन्तु प्रत्येक पचीसवीं चौपाई के अनन्तर एक दोहा न देकर ४ पंक्ति का एक छन्द तदनन्तर एक सोरठा दिया है। यों अयोध्या काण्ड में ८ पंक्ति की ३२५ चौपाइयां १३ छन्द १३ सोरठे और (१३ कम ३२५ अर्थात्) ३१२ दोहे हैं।

इस नियत क्रम के कारण क्षेपक के पकड़े जाने का भय है। जहां कुछ बढ़ाया जावेगा, क्रम में भंग पड़ जावेगा; कुछ पंक्तियां बढ़ जावेंगी। यदि कुछ पंक्तियां हटा के दूसरी सन्निविष्ट की

जावें तो हानि छोड़ लाभ ही क्या होगा ? गोसाईं की रचना को हटाना अनुचित होगा फिर कथा प्रवाह में बाधा होगी; कुछ गोसाईं जी की कही बातें छूट जावेंगी। यह तो हानि प्रत्यक्ष दिखती है। यदि क्षेपक जोड़ने का हठ ही हो तो २५ चौपाई २४ दोहे १ छन्द और १ सोरठा की लम्बी रचना जोड़नी पड़ेगी। उस पर भी कही गई कथा समाप्त हो और कथा प्रसंग में बाधा न आती हो फल स्वरूप अयोध्या काण्ड में क्षेपकों का अभाव सा है।

उत्तर काण्ड की रचना क्षेपक की दृष्टि से विचित्र है। पहिले तो गोसाईं जी ने सीता परित्याग, लवकुश जन्म लवण वध, रामाश्वमेध, भू प्रवेश तथा महा प्रस्थान की कथाओं को स्थान न देके क्षेपक का अवसर दिया है दूसरे राम चरित को छोड़ कर कागभुशुण्ड गरुड़ संवाद को देकर स्वयं क्षेपक जोड़ दिया है पर यह गोसाईं जी की निज की रचना होने से क्षेपक नहीं कहा जा सकता केवल इतना ही कह सकते हैं कि राम चरित के महत्व तथा गौरव की प्रतिष्ठा है। सीता परित्याग आदि मुख्य कथाओं को छोड़ने का कारण यह है कि अयोध्या काण्ड में करुण रस का विशेष वर्णन कर चुकने पर फिर से सीता परित्याग का करुणा कथा प्रसङ्ग छेड़ना अभीष्ट न हुआ फिर सीता माता का परिवाद कथन भी उन्हें अभिलषित न हुआ। जयन्त के चञ्चु प्रहार की कथा श्लेष में कह डाली है।

सीता चरन चोंच हति भागा। भक्तजन इसका इतना ही अर्थ लेवेंगे कि माता जी के चरणों पर प्रहार किया। पर उसने माता के अंचरों पर प्रहार किया यह अर्थ भी समझने वाले निकाल ही लेते हैं। लवकुशादि के जन्म के संबन्ध में इतना ही कहा है।

दुइ सुत सुन्दर सीता जाये।
लव कुश वेद पुरानन गाये॥
दोउ विजयी विनयी गुन मन्दिर।
हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातह केरे।
भये रूप गुन सील घनेरे॥

यों भगवच्चरित्र से सम्बन्ध जिन कथाओं को गोसाईं जी ने छोड़ दिया उन्हें क्षेपककारों ने उत्तर काण्ड में समाविष्ट न करके एक क्षेपक स्वरूप पूरे नये लवकुश काण्ड ही की रचना करके (समावेश की कौन कहे) ग्रन्थ विस्तार कर डाला। पर यह न देखा कि कुछ लोगों के मत में उत्तर काण्ड स्वयं क्षेपक है। वाल्मीकीय तथा अध्यात्म रामायण में बनवास से लौटने तथा राज्याभिषेक तक की कथा लंका काण्ड ही में दे दी गई है। उत्तर काण्ड में रावण तथा बालि सुग्रीव की उत्पत्ति का विवरण दे विस्तार किया है। उसके साथ ही कतिपय उपाख्यानों के साथ भगवान् के उत्तर चरित की कथाएं भी दी गई हैं। वाल्मीकीय रामायण के छ काण्डों का पद्यबद्ध अंग्रेजी अनुवाद करके ग्रिफिथ साहिब ने उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त करके छोड़ दिया है, पद्यबद्ध अनुवाद नहीं किया। उत्तर काण्ड की कथा का संक्षिप्त गद्य उन्होंने म्यौर के संस्कृत टेक्स्ट से उठा के दे दिया है। यों उत्तर काण्ड की सत्ता को सर्वथा लोप (कण्ट्स = क्+ण+ट्+स) करने की भी चेष्टा नहीं की है।

गोसाईं जी अपने राम चरित मानस के बाल, अयोध्या, आरण्य तथा किष्किन्धा काण्डों को क्रमशः छोटा करते आये थे और सुन्दर लंका तथा उत्तर काण्डों को क्रमशः बड़ा करते आये

यदि उत्तर काण्ड में भगवान् का उत्तर चरित छोड़ देना ही निश्चय किया तो काण्ड विस्तार के लिये काग भुशुण्डि के सम्वाद को स्थान देना ही पड़ा उसी के साथ काव्य की प्रतिष्ठा भी रख डाली।

वास्तव में भगवान् का उत्तर चरित बहुत ही करुणा पूर्ण है। सीता माता का जीवन क्लेश ही में व्यतीत होता है। वनवास के क्लेशों को भोगने और विराध तथा रावण द्वारा हरण शूर्पणखा के धृष्ट प्रस्ताव बन्दी निवास आदि की पीड़ा भोग चुकने पर अग्नि परीक्षा झेलनी पड़ी। तब भी लोक को संतोष न हुआ। प्राण वल्लभ द्वारा निरपराध परित्यक्त होने पर सगर्भावस्था में भगवान की लोकरञ्जन वृत्ति को सफल होने देने के लिये सब सहा। दो लाल के जन्म होने पर भी उनका पिता द्वारा लालन सुख न देखा, न उन्हें बड़े होने पर पिता के पास भेजा। जब भगवान के रामाश्वमेध के घोड़े का समाचार अपने लालों से सुना तब उन्हें मर्मान्तक पीड़ा वेदना हुई। कारण यह था कि यज्ञ में पूजन के लिये गांठ जोड़ने वाली पत्नी की आवश्यकता होती है सो यदि यज्ञ करते हैं तो मेरे (सीता के) अभाव में दूसरी पत्नी ने स्थान पाया होगा तब उन्हें मानों भगवान ने शरीर ही से नहीं बरन मन से भी परित्याग कर दिया होगा उसने गङ्गा में डूबना चाहा पर गंगा ने किनारे फेंक दिया। सीता जी को क्या विदित था कि भगवान ने हिरण्मयी सीता प्रतिकृति द्वारा पूजन निर्वाह की आयोजना की थी। अग्नि परीक्षा के दुबारा प्रस्ताव को सुनते ही भू प्रवेश द्वारा इस संतप्त जीवन पर पटाक्षेप हो जाता है। यदि सीता सती का जीवन क्लेश ही क्लेश में बीतता है तो भगवान रामचन्द्र जी भी अपना जीवन वैसे ही बिता देते हैं। राजा होकर लोक (प्रजा) रञ्जन का व्रत धारण कर भगवान् अपनी प्रेयसी, साध्वी, निरपराधिनी राजमहिषी का भी शोक न करके उसे आजीवन के लिये परित्याग कर देते हैं। यह है उनका व्रत पालन, जिसके लिये वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। गार्हस्थ्य जीवन में पत्नी तथा अपत्यलालन से बढ़कर और कौन २ सुख अभिप्रेत हो सकते हैं और कौन २ अधिक आत्मीय हो सकता है! मर्यादा के लिये भगवान् ने उन्हें भी छोड़ा और लोक के समक्ष आदर्श रख गये कि मर्यादा और कर्तव्य पालन में वे भी छोड़े जा सकते हैं।

जिस अयोध्या काण्ड में क्षेपकों का प्रायः अभाव सा है उसी अयोध्या काण्ड की एक सौ दसवीं चौपाई की छः पंक्तियों के अनन्तर एक क्षेपक है, रामायण के कई संस्करणों में वह नहीं मिलता परन्तु गोसाईं जी के जन्मस्थान राजापुर में रक्षित गोसाईं जी के निज हाथ की लिखी प्रति में वह क्षेपक कहा जाने वाला अंश उपस्थित है। कई लोग उस प्रति के गोसाईं जी के हाथ से लिखी जाने में संशय प्रकाश करते हैं; पर डा० ग्रियर्सन और लाला सीताराम जी उसे प्रामाणिक समझते हैं। उन पंक्तियों के समावेश से कथा प्रवाह में बाधा आजाती है और नियम क्रम भी भंग हो जाता है इससे उन्हें क्षेपक कहना अनुचित भी नहीं जचता वह क्षेपक यों है:-

तेहि अवसर एक तापस आवा।
तेज पुञ्ज लघु बयस सुहावा।
कवि, अलखित गति, वेष विरागी॥
मन-क्रम-वचन राम अनुरागी।

सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दण्ड जिमि धरनि तल दशा न जाइ बखानि॥

राम सप्रेम पुलक कि उर लावा।
परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहु प्रेम परमारथ दोऊ।
मिलत धरे तन कह सब कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा।
कीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा।
जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निषाद दण्डवत तेही।
मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूप पियूषा।
मुदित सुअसन पाई जिमि भूखा॥

यह क्षेपक ८ पंक्ति की चौपाई और बीच में एक दोहे का है यहाँ तक नियम पालन हुआ पर चौपाइयों की संख्या बढ़ गई और छन्द २५ के अनन्तर न आकर २६ चौपाई के अनन्तर आया। सब से बड़े के कथा प्रवाह भंग दोष है।

यह तेज पुञ्ज, लघुवयस, कवि अलक्षित गति, विरागी वेष राम अनुरागी कौन है जिसे राम लक्ष्मण ने गले लगाया; निषाद ने दण्डवत् किया और जो सीता की चरणधूरि को शिर पर धारण कर आशीर्वाद का भाजन हुआ?

अलक्षित गति से विदित होता है कि गोसाईं जी स्वयं प्रकाश नहीं डाला चाहते कि यह तापस कौन है? वाल्मीकीय वा अध्यात्म रामायण में ऐसे किसी के आने का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता।

बनी तो बिगारे कत?

[ले० पं० उमाशंकर द्विवेदी विरही]

जैसे के संग तैसो तूही बनि आवे तो तो,
तेरे औ हमारे बीच भेद कहा भाखिबत?।
विस्वंभर होय देत कीरी अरु कुंजर को,
तू ही कह तेरे द्वार आय फेर जै हैं कत?।
खोटे हैं कि खरे हैं कि जेहू हैं तिहारे हैं जु,
तू ही ना निभावें, होगी कौन धौं हमारी गत?
नयी ना बनावे ये तो तेरो अधिकार नाथ,
काहूं की कृपाल! बात बनी तो बिगारे मत!॥

योग-साधन

[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

७२३. मोह अर्थात् आसक्ति समस्त प्रकार के मानसिक दुःखों और चिन्ताओं का कारण है। यह हृदय में छिपा रहता है। इस को तीव्र वैराग्य की तेज खड्ग से काटना चाहिये। यह बाजीगर की भाँति भिन्न भिन्न सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है। इसकी सूक्ष्म गति को समझना चाहिये।

७२४. जिस मनुष्य ने केवल सांसारिक धन सम्पत्ति का त्याग कर दिया है, वह त्यागी नहीं कहला सकता। वरंच वह मनुष्य त्यागी है जो संसार में रहता हुवा इससे दोष दृष्टि रखता है और जो किसी विषय विकार में नहीं फंसता और जो कभी आत्म भाव से नीचे नहीं गिरता। शिखध्वज राजा और चंडाल रानी की कहानी योग वसिष्ठ में पढ़नी चाहिये।

७२५ ओं तत् सत्, ओं परब्रह्म या परमात्मा

का वाचक है। तत् सत् भी उसी के वाचक शब्द हैं। परब्रह्म का लक्ष्य कराते हैं। तत् का अर्थ है 'वह सत् का अर्थ सत्य'। कुछ मनुष्य ओं के स्थान में ओं तत् सत् का जप करते हैं निर्गुण उपासना के लिये यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है।

७२६. सन्तोष, पातञ्जलि के पांच नियमों में सबसे मुख्य नियम है 'न सन्तोषात्परं सुखम्'। योग वासिष्ठ में ये मोक्ष के चार द्वारपालों में से एक है। यदि आपको सन्तोष की प्राप्ति हो जाय तो विचार संतसंग और शान्ति आपही आजावें। सन्तोष से परम आनन्द की प्राप्ति होती है।

७२७. इस संसार में राजा रंक और रंक राजा बन जाता है। यह माया इसी प्रकार चक्र लगाती रहती है। संसार परिवर्तन शील है। केवल आत्मा ही नित्य है। आत्मा साक्षी रूप है, समस्त परिणामों का द्रष्टा है।

७२८. परमात्मा सूक्ष्मात्मा है। जो धागे की भांति एक दिलसे दूसरे दिलमें पिरोया हुआ है वह सब दिलों को मिलाता है। वह अन्तरात्मा है जो समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है। वह सब के ऊपर है और सब के भीतर है।

७२९ भक्त जब परमात्मा को भूल जाता है तो उसको बड़ा दुःख होता है, वह विरहाग्नि से तड़फता रहता है।

७३० करुणा सर्व श्रेष्ठ गुण है, क्षमा सबसे बलवान शक्ति है, आत्म ज्ञान सबसे उत्तम ज्ञान है, ब्रह्म विद्या सबसे ऊंचा विज्ञान है, आत्मा का आनन्द सबसे बड़ा आनन्द है, आत्मरति सर्वोच्च जीवन है सत्य सबसे बड़ा पदार्थ है, ब्रह्म ज्ञानी चौदह भुवन में सबसे बड़ा मनुष्य है।

७३१. काली माता की पूजा करो, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक स्थान में उसकी स्थिति का अनुभव करो। बालक की भान्ति अपना स्वच्छ हृदय उसके सामने खोलदो। उससे वार्तालाप करो "ओं क्लीं कालीं" की जप का उच्चारण करो। इस मंत्र की २०० माला फेरो। ऐसा करने से समस्त प्रकार के दुःख, कमजोरियां और आपत्तियां दूर होजावेंगी। उसमें पूर्ण विश्वास रक्खो और राम प्रसाद व कालीदास की भान्ति उसके नाम का जप करो।

७३२. सत्य का आचरण करने में बड़ा कष्ट होता है। त्याग से अधिक आनन्द नहीं है। शरीर को आत्मा समझने से अधिक कोई क्लेश नहीं है। स्त्री पुत्रादि के बन्धन में रहने से अधिक दुख नहीं है। आत्मा से बढ़कर कोई धन नहीं है। तितिक्षा युक्त वैराग से बढ़कर कोई शक्ति नहीं है।

७३३. निर्गुण ब्रह्म में गुणों का आरोपण करना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

७३४. हरी को याद करना, सच्चा पश्चात्ताप, हृदय से की गई प्रार्थना और उपवास करना इनसे सब पाप नष्ट होजाते हैं। प्रार्थना से पहाड़ भी हिल जाते हैं। प्रार्थना द्वारा हम परमात्मा के अत्यन्त निकट पहुंच जाते हैं। पश्चात्ताप का प्रयोजन अपने शुद्धि करना है। पश्चात्ताप के पीछे फिर दुष्ट कर्म कभी नहीं करना चाहिए। उपवास करना भी चित्त शुद्धि के लिए है, उपवास से चित्त बहुत शुद्ध होजाता है।

७३५. ऐसा कभी मत कहो कि मेरे कर्मों ने मुझे ऐसा बना दिया "पुरुषार्थ करो" प्रारब्धवादी मत बनो। इस पर विचार करो कि मार्कण्डेय ऋषि १६ वर्ष की आयु में मरने वाला था परन्तु तप करके वह चिरंजीवी बन गया। सावित्री तप द्वारा अपने मृत पति को यमराज से छुड़ा लाई। बैंजमिन फ्रैंकलिन अपने पुरुषार्थ से अमेरीका का प्रधान बन गया। मनुष्य अपने भाग्य को आप ही

निर्माण करता है। विश्वामित्र एक राजा था और अपने पुरुषार्थ से ब्रह्मर्षि बन गया पश्चात् उसने त्रिशंकु के लिए नवीन सृष्टि की रचना करदी, यदि तुम भी अध्यात्मिक साधनों में लग जाओ और तप व ध्यान करो तो आश्चर्य जनक कार्य कर सकते हो। तप द्वारा रत्नाकर दस्यु-बाल्मीक ऋषि बन गया। बंगाल के जगाई, मधाई लुटेरे उच्च कोटि के सन्त बन गए। यह गौरांग नित्यानन्द के शिष्य बन गए थे। जेम्स् ऐलन की पुस्तक Poverty to power ध्यान पूर्वक पढ़ो॥

७३६. सुख और दुःख पदार्थों में नहीं है। चित्त की वृत्ति उसमें सुख व दुःख का आरोप करलेती है। आम मीठा नहीं है हमारे भाव के कारण हमें उसमें मिठास का ख्याल होता है।

७३७. शुद्धात्मा योगी या ज्ञानी समस्त संसार को ज्ञान से परिपूर्ण देखता है और समझता है कि यह सब मेरा आत्मा ही है।

७३८. नास्तिक भी जब अत्यन्त दुःख में होता है तो भगवान् से प्रार्थना करता है अतएव दुःख और मृत्यु के समय सब ही भगवान् का ध्यान करते हैं परन्तु सच्चा भक्त अन्तरात्मा से भगवान् की प्रार्थना करता है।

७३९. स्तोत्र परमात्मा की स्तुति है परन्तु कालान्तर में वही गुण भक्त में प्रवेश करने लगते हैं, स्तोत्र उच्चारण करने का यही फल है।

७४०. प्रार्थना करने में हम परमात्मा से कुछ मांगते हैं चाहे वह ज्ञान हो अथवा स्वास्थ्य व पवित्रता प्रार्थना वह प्रेम की भिक्षा होती है जो भक्त दुःख के समय अपने प्यारे प्रभु से करता है, जब कभी मनुष्य का चित्त भ्रम में पड़ जाता है या अध्यात्मिक मार्ग में चलते २ कुछ रुकावट आजाती है।

७४१ पानी के एक tub में बैठ जाओ। पानी तुम्हारी नाभी तक आजाना चाहिए। यदि tub न मिले तो नदी या तालाब में बैठना चाहिए। शरीर का भार अपने पञ्जों पर रखना चाहिए जिस तरह तुम शौच जाते समय बैठते हो। इसको उत्कट आसन कहते हैं।

७४२. वह अवस्था जिसमें समस्त भेद भावों का नाश हो गया है, वही शुद्ध सत्ता है, वही ज्ञान है और वही आनन्द है, वह अदृश है, वह मन और वाणी से दूर है, वह स्वतः सिद्ध है, वह ज्योति स्वरूप और सनातन ब्रह्म है।

७४३. मुझे स्वर्ग की इच्छा नहीं है क्योंकि वहां जाने से कुछ लाभ नहीं है। मैं तो फिर जन्म धारण करके इसी संसार में आना चाहता हूं। स्वर्ग से मुझे पूर्ण शान्ति नहीं मिल सकती। मैं तो अनन्त मोक्ष की प्राप्ति के लिये हरि के चरणों का ध्यान करूंगा। स्वर्ग वासी और इन्द्र भी उस मनुष्य से स्पर्धा रखते हैं जो मृत्यु लोक में हरि के चरणों का ध्यान करते हैं।

७४४. जो सब जीवों में एक ही भगवान का रूप देखता है वह ऋषि है। वह संसार की समस्त चिन्ताओं और क्लेशों से मुक्त रहता है। वह सदैव आनन्द में मग्न रहता है।

७४५. अय मेरे प्रभु! मैं बार २ गलती करता हूं। मैं नहीं जानता कि तुम्हारी सेवा किस तरह करूं। मैं मूर्ख व अभिमानी हूं। मेरा मन तेरे से फिर गया है और मैं सांसारिक पदार्थों में लोलुप हो गया हूं। सब पदार्थों के देने वाले हरि को भूल कर मैंने कितना अनर्थ किया है? अब तुम ही मेरे सर्वेश्वर और आश्रय भगवन् मेरी रक्षा करो। त्राहि, प्रबोदयाल, प्रबोदयाल।

७४६. जो मनुष्य अच्छे काम करता है, पर-

मात्मा की दया से उसके हृदय में आप ही भक्ति का प्रादुर्भाव हो जावेगा। जिस मनुष्य के चित्त में "मैं और तू यह और वह के भाव रहते हैं वह बन्धन में बन्धा हुआ है।

७४६. जो जिस कर्म के बीज बोता है वही उसके फल को खाता है। मैं ने अपना जीवन भगवान् शिव के चरणों में अर्पण करदिया है, मुझे न तो चिन्ता है और न शोक है मेरे समस्त दुःख, भय, सन्देह और भ्रमनाश होगए हैं।

७४७ एक दुष्ट पुरुष और श्रेष्ठ पुरुष, एक वैश्या और कुल-वधु दोनों उसी परमात्मा के पुत्र पुत्री हैं। दोनों का उत्पत्ति का स्थान एक ही है। उनके अणु २ और परमाणु २ में ब्रह्म व्यापक है। यह सब ब्रह्म ही ने अपनी लीला से आप रूप धारण किया है इसलिए उनके साथ समान व्यहार करना चाहिए। समान दृष्टि रखनी चाहिए। भेद भाव झूठा और बनावटी है यह सब मनकी लीला है।

७४८. विवेक की रुई को कातकर वैराग का धागा बनाओ। एकाग्रता और ज्ञान की गाठें बनाओ। अपने चित्त को इस धागे पर रक्खो। यह धागा न तो टूट सकता है, न गीला हो सकता है और न जल सकता है। यह सच्चा यज्ञोपवीत है इसको शौच क्रिया के समय कान में टांकने की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने इस ज्ञान रूपी सनातन धागे को पहन लिया है वह धन्य हैं।

७४९ क्षमा सन्त का स्वरूप है क्रोध मूर्ख का भाव है, दया सच्चे का गुण है, जिज्ञासु का शस्त्र विवेक है, और मुमुक्षु का हथियार वैराग्य है।

७५०. चाहे कितनी इच्छाएं और लालच तुमको घेरें परन्तु तुमको सदैव इनसे ऊपर रहनाचाहिए। इसीमें तुम्हारी शक्ति का रहस्य है, यही सच्चा त्याग है।

७५१. सत्य विश्वास, सत्य उद्देश, सत्य भाषण, सत्य कर्म्म, सत्य पुरुषार्थ, शुद्ध कमाई, ठीक ध्यान यह ज्ञानोपार्जन के साधन हैं। जब तुम्हारे चित्त में किसी अशुद्ध भावना का उदय हो तो उसको पूरे प्रयत्न से दबाओ। बुरे गुण तुम्हारे चित्त में प्रविष्ट न होने पावें। अच्छे गुणों का विकाश करना चाहिए। दूसरों के साथ भलाई करो। अपने अच्छे कर्मों को बढ़ाओ ऐसा करने से तुम मोक्ष की तरफ बढ़ोगे।

७५२. यह मन क्षण भरमें संसार को रचलेता है पलभर में उसको नष्ट करदेता है। मन ही जगत है, यही सब कुछ है, मनही आत्मा की शक्ति है, मनका वश करना माया का वश करना है।

७५३ भक्ति परमात्मा से अतिशय प्रेम करने का नाम है। ईश्वर से शुद्ध प्रेम करने का नाम ही भक्ति है। मनुष्य को इसका अभ्यास करना चाहिये सबसे बुरी बीमारी इच्छा है। इच्छा कभी तृप्त होने वाली नहीं है और इसका अन्त नहीं है। इस रोग की सर्वोत्तम औषधी विवेक और आत्म विचार है।

७५४. सहन शीलता, मौन, आत्मा का ध्यान, एकान्तवास भिक्षा से निर्वाह करना, त्याग, वैराग, विवेक, नम्रता लालच न करना, चित्त को वश में रखना ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण, उपनिषदों का स्वाध्याय, प्रणव का जप, आत्म विचार यह सन्यासी के धर्म्म हैं।

७५५. यदि तुम किसी वृक्ष की जड़ को जल द्वारा सींचोगे तो समस्त शाखें और पत्ते सन्तुष्ट व हरे भरे होजायगें इसी प्रकार परमात्मा को प्रसन्न करने पर सब ही प्रसन्न होजाते हैं क्योंकि यह समस्त जगत भगवान ही का रूप है इसके सिवाय कुछ भी नहीं है।

७५६. मनुष्य का अपना पयत्न और भगवान की कृपा दोनों मिलकर सफलता की प्राप्ति करा सकते हैं। वेद का अन्त सत्य का साक्षात्कार करना है, सत्य ही ॐ ३म् है, सत्य ही आत्मा है, सत्य ही ब्रह्म है।

७५७. शुद्धाचरण से कीर्ति, आयु वृद्धि, सम्पत्ति और पुत्रवत्ता प्राप्त होती है और अन्त में यही मोक्ष का साधन है। सत्य सनातन है। सत्य मार्ग को कभी नहीं त्यागना चाहिए। भय या माया के लालच से सत्य पथ का कर्म नहीं छोड़ना चाहिए। सत्याचरण से तुम अजर अमरत्व को प्राप्त करलोगे।

७५८. वेदों की शिक्षा का सार इन्द्रियों का संयम, और चित्त की शुद्धि और उसका संयम है। जो अहंकार रहित है जिसमें द्वेष नहीं है। जो सबका मित्र है, जो सब प्राणियों के साथ अपनी आत्मा के तुल्य व्यवहार करता है वह जीवन्मुक्त है।

७५९. बिना पवित्र उद्देश के मनुष्य ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता यद्यपि वह अपनी समस्त सम्पत्ति भी दान करदे, रात दिन उपासना करे, यज्ञ करे, और चाहे योग साधन करे।

७६०. जिस प्रकार बीज में वृक्ष की शाखें, पत्ते और तना समाया होता है उसी प्रकार यह समस्त जगत ब्रह्म में समाया रहता है और अपनी इच्छा से आप ही विराट रूप में प्रकट हो जाता है॥

७६१. चित्त द्रष्टा है, चित्त चैतन्य है, जो कुछ दृष्टिगोचर है वह सब नाशवान है, चित्त जोकि द्रष्टा है वही अविनाशी है। इसलिए चित्त ही सत है।

७६२. समस्त दुःख ब्रह्म में लय होजाते हैं, इसलिये ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है। इसलिए चित्त, आनन्द है। सत-चित्त-आनन्द एक हैं

७६३. मनुष्य की तीन अवस्थाएं होती हैं, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त। मनुष्य ईश्वर को भी अपने संकल्प से ही बनाता है मनुष्य ही ईश्वर को रचता है। ईश्वर मनुष्य को नहीं रचता। क्या इस सिद्धान्त को समझ लिया है? नहीं तो इस पर विचार करो।

७६४ हृदय में चिदाकाश है यह ज्ञान की भूमि है। यहां ही परमात्मा अथवा ब्रह्म का वास है। जिस प्रकार कट पुतली के तमाशे में, मनुष्य परदे के पीछे रहकर कट पुतलियों को नचाता है इसी प्रकार हिरण्यगर्भ मनुष्यों के शरीरों को क्रिया देता है सूत्रधार है।

७६५. मेरे पास अनन्त सम्पत्ति है। यदि मिथलापुरी भस्म होजावे तो भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता क्योंकि ज्ञानरूपी अक्षय कोष मेरे पास मौजूद है।

७६६. ओ शैतान चित्त! तू क्यों व्यर्थ नाशवान पदार्थों में भटकता फिरता है, इन विकारों के जगत् में तुझे शान्ति नहीं मिलसकती। इन चित्त लुभाने वाले पदार्थों में तुझे शान्ति नहीं मिल सकती। अपने केन्द्रस्थान आत्मा में वापस चला जा वहां जाकर ही तुझको अनन्त आनन्द अनन्त ज्ञान और अनन्त सत्ता की प्राप्ति होगी।

७६७. इस जगत में मनुष्य का जीवन क्षण भंगुर है फिर भी मोह और अहंकार के कारण मनुष्य यह समझता है कि मैं यहां सदैव रहूंगा। आसक्ति माया का प्रथम पुत्र है। संसार के समस्त दुःखों की इसीसे उत्पत्ति होती है। आसक्ति मृत्यु है और अनासक्त अवस्था जीवन है। अनासक्ति दुःख और भय से मुक्त करदेती है। विवेक और वैराग से समस्त आसक्ति का नाश करदेना चाहिए। केवल आत्मा से राग रखना चाहिए।

७६८. समस्त धर्म्म परमात्मा की प्राप्ति के भिन्न२ मार्ग हैं। मुख्य २ सिद्धान्त सबके एक ही है, गौण सिद्धान्तों में भेद है। यदि तुम्हारा चित्त भगवान में भरे पुकार लग रहा है तो तुमको यह भी पता नहीं रह सकता कि संसार में क्या हो रहा है? इन्द्रियों और चित्त के दमन करने से तुमको आत्म-साक्षात्कार हो सकता है, आत्म साक्षात्कार के लिए इच्छाओं का मारना, मोह और द्वेष का त्याग करना भी आवश्यक है।

७६९. जिस मनुष्य को मन, कर्म्म, वचन से किसी प्राणी से भी राग, द्वेष नहीं है वह स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप है।

७७०. अपने कर्मों का फल भोगने के लिए मनुष्य इस स्थूल शरीर को धारण करता है। एक ही प्राण बांसुरी के भिन्न छिद्रों में प्रवेश करके सात स्वरों को उत्पन्न कर देता है इसी प्रकार एक ही ब्रह्म अपनी लीला से अनेक नाम व रूप धारण कर लेता है।

तुलसीकृत रामायण का आकाशवाणी प्रकरण

(ले० श्री महावीर प्रसाद जी 'बंजरंगबली' श्रीवास्तव)

गतांक से आगे।

एतस्मिन्नंतरे राम कश्यपोऽग्निसमप्रभः।
अदित्या सहितोराम दीप्यमान स्वौजसा ॥ १० ॥
देवी सहायो भगवान्दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
व्रतं समाप्य वरदं तुष्टाव मधु सूदनम् ॥११॥
तपोमयं तपोराशिं तपो मूर्त्तिं तपात्मकम्।
तपसा त्वां सुतप्तेन पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
शरीरे तव पश्यामि जगत्सर्वमिदं प्रभो।
त्वमनादिरनिर्देश्यस्त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥

अर्थ-विश्वामित्र जी श्रीराम जी से कहते हैं, 'हेराम! इसी समय अग्नि के समान तेजस्वी कश्यप मुनि अपनी स्त्री देवी अदिति के साथ दिव्य सहस्र वर्ष का व्रत समाप्त कर वर देने वाले भगवान् मधुसूदन की स्तुति करने लगे, 'तपोमय, तपोराशि, तपोमूर्ति और तपात्मक आप को हे पुरुषोत्तम! मैं कठिन तप के द्वारा देख रहा हूं। आप अनादि हैं' अनिर्देश्य हैं 'मैं आप की शरण हूं' इस पर भगवान् ने प्रसन्न हो कर वर माँगने के लिये कश्यप मुनि से कहा-यथा,

तमुवाच हरिः प्रीतः कश्यपं पूतकल्मषम्।
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मि मतो मम ॥ १४ ॥

इस प्रकार भगवान् के वचन सुन कश्यप जी बोले-यथा,

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मारीचः कश्यपोऽब्रवीत्।
आदित्या देवतानां च मम चैवानुयाचितम् ॥ १५ ॥
वरं वरद सुप्रीतो दातुमर्हसि सुव्रत।
पुत्रत्वं गच्छ भगवन्नादित्या मम चानघ ॥ १६ ॥
भ्राता भव यवीयांस्त्वं शक्रस्यासुर सूदनम्।
लोकानां तु हितार्थाय साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

अर्थ-भगवान् के वचन सुन मरीचि के पुत्र कश्यप जी बोले 'अदिति देवता गण, तथा मेरी

भी यही कामना है कि हे सुव्रत! प्रसन्न हो कर यही वर दीजिये कि आप अदिति के गर्भ से मेरे पुत्र हों, और इन्द्र के छोटे भाई हो कर शोक से आर्त देवताओं की सहायता करें।

कश्यप अदिति का उपरोक्त तप व वरदान वामनावतार के सम्बन्ध का है संभव है कि रामावतार के लिये उनके तप की कथा, इसके अतिरिक्त कहीं और भी हो, अथवा यह भी संभव है कि देवताओं की सहायता के सम्बन्ध में, इसी वरदान से सदा ही युग २ में अवतार लेकर देवताओं की सहायता का भार परंपरा रूप से प्रभु ने ले लिया हो; क्योंकि जिनको एक बार अपनाया, उनको सहायता व रक्षा का सदैव ही ध्यान रखना प्रभु का विरद ही है। इस प्रकार दो में कोई बात भी हो, पर उपरोक्त कश्यप अदिति के तप व वरदान का प्रसंग देख लेने से, मनु शत रूपा व कश्यप अदिति के तप और वरदान के उद्देश्य में स्वभाव से ही कितना अन्तर है, इतना तो अवश्य ही प्रकट हो जाता है। और वह अन्तर यह कि कश्यप अदिति के वरदान में देवताओं की सहायता ही मुख्य उद्देश्य है, जिस की आवश्यकता प्रत्येक अवतार में रहा करती है। देवताओं ने कहा भी है–

जब २ नाथ सुरन्ह दुःख पायो।
नाना तनुधरि तुमहिं नसायो॥

पर मनुशतरूपा वरदान में देवताओं की सहायता व असुरों के वध इत्यादि का उद्देश्य लेश मात्र भी नहीं पाया जाता, किन्तु उनका वरदान प्रभु के प्रति शुद्ध वात्सल्य रस का आस्वादन करने के लिये ही है, जैसा की मानस रामायण में स्पष्ट है–

मनुजी– दानि शिरोमणि कृपानिधि, नाथ कहौं सतिभाउ।
चाहौं तुमहि समान सुत, प्रभु सन कौन दुराउ॥

जिसके उत्तर में 'आपु सरिस खोजहुं कहं जाई।
नृप तव तनय होवहुं आई'

यह प्रभु के वचन हैं–

जो वर नाथ चतुर नृप मांगा।
सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा॥

साथ ही शतरूपा जी ने कुछ और भी मांगा। यथा–

जे निज भक्त नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु॥

जिसके उत्तर में प्रभु ने कहा–

जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं।
मैं सो दीन्ह सब संशय नाहीं॥
मातु विवेक अलौकिक तोरे।
कबहुं न मिटिहि अनुग्रह मोरे॥

पुनः मनु जी ने भी कुछ और विशेष वर मांगा–यथा

बन्दि चरण मनु कहेउ बहोरी।
और एक विनती प्रभु मोरी॥
सुत विषयक तव पद रति होउ।
मोहि बरु मूढ़ कहौ किन कोऊ॥
मणि बिनु फणि जिमि जल बिनु मीना।
मम जीवन तिमि तुमहि अधीना॥

उत्तर में प्रभु ने एवमस्तु कहा, यथा–

अस वर माँगि चरण गहि रहेऊ।
एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ॥

पुनः आगे प्रभु के ये वचन हैं:–

अब तुम मम अनुशासन मानी।
बसहु जाइ सुर पति रजधानी॥
तहं करि भोग विलास, तात गये कछु काल पुनि।

होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत ॥
इच्छा मय नर वेष संवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे ॥

अंशन सहित देह धरि ताता।
करिहौं चरित भगत सुख दाता ॥
जो सुनि सादर नर बड़ भागी।
भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥
आदि शक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरि हि मोरि यह माया ॥
पुउब मैं अभिलाष तुम्हारा।
सत्य २ पन सत्य हमारा ॥

इस प्रकार मनुशतरूपा के वरदान में देवताओं की रक्षा व असुरों के वध का उद्देश्य सारे प्रसंग में कहीं लेश मात्र भी नहीं पाया जाता। अब ध्यान देने की बात है कि आकाश वाणी में यदि मनु शतरूपा के दशरथ कौशल्या होने की बात प्रकट कर दी जाती, तो परिणाम विपरीत ही होता, क्योंकि प्रथम तो मनुशतरूपा का वरदान, भक्त और भगवान् के बीच के रहस्य की बात है, देवताओं का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर यदि उन देवताओं में से किसी को उनके वरदान की ठीक २ व्यवस्था मालुम भी होती, तो उससे उन्हें किसी प्रकार का सतोष न हो कर उलटी बाधा ही देख पड़ती, और इस प्रकार के सन्देह उनके मन में जाग्रत हो उठते, कि, 'प्रभो! यदि आपने मनुशतरूपा के लिये ही अवतार लिया, तो इससे हम सब देवता क्या आशा करें, क्योंके अपने प्राण प्रिय सुकुमार बालकों को, हम लोगों के लिये, घोर निशिचरों के सन्मुख लड़ने के लिये, वे काहे को भेजेंगे? यह तो और उलटी बाधा पड़ेगी, (जैसा कि चरित्र भाग में विश्वामित्र जी की याचना पर 'कहं निशिचर अति घोर कठोरा। कहं सुन्दर सुत परम किशोरा' इस प्रकार चक्रवर्ती श्रीदशरथ जी के वचनों से स्पष्ट है)।

इस प्रकार मनु शतरूपा के दशरथ कौशल्या होने की बात प्रकट कर देने से आकाश वाणी देवताओं के लिये 'हरणि शोक संदेह' के विपरीत 'सन्देह जनक' हो जाती है और यह बात आकाश वाणी के मुख्य तात्पर्य्य के ही विरुद्ध है।

प्रत्युत कश्यप अदिति का सम्बन्ध देवताओं के लिये विशेष रूप से सन्तोष प्रद है। क्योंकि एक तो कश्यप अदिति ऐसे ही उन के माता पिता ही हैं, फिर कश्यप अदिति के वरदान में देवताओं की सहायता ही मुख्य उद्देश्य भी है।

इस प्रकार कश्यप अदिति का सम्बन्ध आकाश वाणी के मुख्य उद्देश्य 'हरणि शोक सन्देह' के सर्वथा अनुकूल है। इसी से आकाश वाणी मनुशतरूपा के दशरथ कौशल्या होने की कोई चर्चा न करके, देवताओं के विशेष सन्तोष के लिये, कश्यप अदिति के वरदान का सम्बन्ध जान बूझ कर प्रकट किया गया है।

पर कश्यप अदिति के वरदान का सम्बन्ध किस सुन्दरता के साथ प्रकट किया गया है, यही बात समझने की है। तात्पर्य्य यह कि कश्यप अदिति का सम्बन्ध प्रगट करते हुये प्रसंगानुकूल कुछ आवश्यक बातों की संभाल बहुत अपूर्वता के साथ आकाश वाणी के शब्दों में पाई जाती है। वे आवश्यक बातें, जिनकी संभाल की गई है निम्न लिखित हैं। १-आकाश वाणी सर्वथा सत्य हो क्योंकि प्रभु सत्य संकल्प हैं! २-मनुशतरूपा के दशरथ कौशल्या होने में कोई अन्तर न पड़े, क्योंकि उनका वरदान ही इस अवतार का मुख्य हेतु है। ३-कश्यप अदिति को वरदान देकर पूर्व काल अर्थात सृष्टि के प्रारंभिक समय में ही प्रभु ने देवताओं की सहायता का भार ले लिया है, यह

बात भी सन्तोष के अर्थ देवताओं को स्मरण हो जाय।

४-इस अवतार में दशरथ कौशल्या कौन हुये हैं? इस बात की ओर विशेष ध्यान देने का देवताओं को अवसर ही न रहे। क्योंकि मनु शतरूपा के दशरथ कौशल्या होने की बात उनको उधेड़बुन में डालने वाली है। जैसा कि पहले ही विस्तार से लिखा गया है।

अब आकाश वाणी में उपरोक्त बातों की संभाल एक साथ ही किस तरह पर की गई है, इस बात को समझने के लिये चौपाइयों के अर्थ की गंभीरता पर ध्यान देना परम आवश्यक है।

१ कश्यप अदिति महातप कीन्हा।
तिन कहं मैं पूरुब बर दीन्हा॥

इस चौपाई में 'पूरुब बर दीन्हा' से 'देवताओं की सहायता का वर ही अभिप्राय है। इसके अतिरिक्त उनके पुत्र होने की बात इस चौपाई से नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि देवताओं की सहायता का सम्बन्ध प्रत्येक अवतार से होने के कारण कश्यप अदिति के वरदान का यह अंश, अर्थात् देवताओं की सहायता, प्रत्येक अवतार में घटित होता है, पर हर अवतार में जन्म भी कश्यप अदिति के ही लेवें, यह आवश्यक नहीं है।

२-आगे की चौपाई 'तेदशरथ कौशल्या रूपा। कोशल पुरी प्रगट नर भूपा' में इस चौपाई को ऊपर वाली चौपाई से मिला कर ते शब्द से ऊपर कहे हुये कश्यप अदिति का अर्थ लेकर, 'वे कश्यप अदिति ही दशरथ कौशल्या रूप से प्रकट हैं; ऐसा अर्थ करना ही सारे भ्रम तथा पूर्वा पर विरोध का कारण हो जाता है। पर ऐसे गंभीर प्रसंग में (जिसके लिये स्वयं गोस्वामी जी ने ही, 'गगन गिरा गंभीर भइ' इस प्रकार बोल कर गंभीर का शब्द दे दिया) अर्थ करने में इतनी शीघ्रता न करके ते शब्द के संकेत पर और विशेष रूप से ध्यान देना उचित है।

यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि 'देवताओं की सहायता' का वरदान तो कश्यप अदिति को दिया गया, पर उस वरदान की पूर्ति का अवसर जब २ रामावतार के द्वारा प्रकट होता है, तब २ दशरथ कौशल्या रूप नर भूप के घर अवतार लेकर ही, उस 'देवताओं की सहायता' रूप कश्यप अदिति के वरदान की पूर्ति हुआ करती है। अब वह दशरथ कौशल्या रूप नर भूप, स्वयं कश्यप अदिति ही हों, अथवा और कोई। इस बात का प्रत्येक अवतार के लिये कोई नियम नहीं है। अतएव देवताओं को तो मतलब दशरथ कौशल्या रूप नर भूप से है, जिनके द्वारा ही प्रत्येक रामावतार में उनका कार्य्य सिद्ध हुआ करता है, अब दशरथ कौशल्या कौन हुये हैं? इस बात से उनको विशेष प्रयोजन नहीं है।

अतएव 'ते दशरथ कौशल्या रूपा। कोशल पुरी प्रगट नर भूपा' में ते शब्द से देवताओं के अभीष्ट उन दशरथ कौशल्या रूप नर भूप का ही संकेत है। जो कि प्रत्येक रामावतार में प्रभु के माता पिता हुआ करते हैं न कि ऊपर की चौपाई में कहे हुये कश्यप अदिति का। उदाहरण के लिये यों समझना चाहिये कि जैसे कोई कहे कि, 'पूर्व काल में नृसिंह भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था, वह प्रह्लाद रूप भक्त राज आज प्रकट है'।

अब इस का अर्थ करने में वह शब्द ऊपर कहे हुये नृसिंह या हिरण्यकशिपु के लिये नहीं होगा, किन्तु पूर्वकाल में प्रकट प्रह्लाद रूप भक्तराज के लिये ही वह शब्द है, जिनके लिये ही पूर्वकाल में नृसिं भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था।

इसी प्रकार–

कश्यप अदिति महातप कीन्हा।
तिन कहं मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दशरथ कौशल्या रूपा।
कौशल पुरी प्रकट नर भूपा॥

इन चौपाइयों में दूसरी चौपाई में कहे ते शब्द से ऊपर की चौपाई में कहे हुये कश्यप अदिति का संकेत नहीं है, किन्तु परंपरा रूप से पत्येक रामावतार में प्रभु के माता पिता होने वाले दशरथ कौशल्या रूप नर भूप के लिये ही ते शब्द का संकेत है। तात्पर्य यह कि ते दशरथ कौशल्या रूप नर भूप जो कि प्रत्येक रामावतार में प्रभु के माता पिता हुआ करते हैं, इस समय कौशल पुरी में प्रगट हैं।

इस तरह उपरोक्त दोनों चौपाइयों का स्पष्टी करण यों होगा। 'कश्यप अदिति ने महा तप किया। उनको पूर्वकाल में, (अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ समय) में ही, मैंने (तुम्हारी सहायता करने) का वर दे रक्खा है। इतना ही नहीं, किंतु, (पुत्येक रामावतार में जिनको दशरथ कौशल्या रूप नरभूप के घर में प्रकट हो कर तुम्हारी सहायता किया करता हूं) ते दशरथ कौशल्या रूप नरभूप कौशल पुरी में प्रकट हैं, तात्पर्य यह कि रामावतार के नाटय की भूमिका सूचित करने वाला पहला दृश्य कौशल पुरी (अयोध्या रूपी नाटयशाला में खुल चुका है, अब नाटय के प्रारंभ होने अर्थात् अवतार लेने मात्र की ही देर है।

अब दशरथ कौशल्या इस अवतार में कौन हुये हैं, इस बात को आकाश वाणी में प्रभु ने छिपा लिया है, क्योंकि उस बात को जान लेने से देवताओं को फिर भी एक पुकार की उधेड़ बुन में पड़ जाने की संभावना थी, जैसा कि पृथम ही लिखा गया है।

पुनः आकाश वाणी में प्रभु के वचनों की रचना कुछ ऐसी है कि उससे देवताओं को कश्यप अदिति के दशरथ कौशल्या होने का भ्रम भी हो सकता है, जैसे आरण्यकाण्ड में:–

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता।
अहै कुमार मोर लघु भ्राता॥

इस प्रभु के व्यंग वचन में नवीन अवस्था सूचक 'कुमार' शब्द से शूर्पणखा को लक्ष्मण जी के 'कुमार' (अविवाहित) होने का भ्रम हो गया था। पर इस अवसर पर इस अवतार का भ्रम भी देवताओं के लिये कुछ पतिकूल न होकर, उनके धैर्य्य के लिये सहायक ही है। किसी २ अवतार पर भ्रम इत्यादि भी बाधक न हो कर अनुकूलता का ही काम कर जाते हैं, जैसे चित्रकूट में अयोध्या तथा मिथिला के नगर निवासियों के लिये भी ऐसा अवसर आया था। यथा–
लोग उचाटे अमर पति, कुटिल कुअवसर पाय
पुनः साथ ही–

सोकु चालि सब कहं भइ नीकी।
अवधि आस सब जीवन जी की॥
नतरु लखन सिय राम वियोगा।
हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥

जैसे भरत जी की चित्रकूट यात्रा में देवता लोग बारंबार घबराते ही रहे उनके कार्य्य के लिये ही प्रभु ने राज्य छोड़ बनवास को ग्रहण किया चित्रकूट तक पहुंच भी चुके हैं, पर देवताओं को धैर्य्य अब भी नहीं है। अब भी घबराते तथा अनेक पुकार के छल बल करने से बाज नहीं आते। तभी तो कहा गया है–

काक समान पाक रिपु रीती।
छली मलीन कतहुं न प्रतीती॥

अतएव आकाश वाणी में मनु शतरूपा के दशरथ कौशल्या होने की बात प्रकट हो जाने से उनका हृदय किसी प्रकार धैर्य्य को प्राप्त न होता। अतएव प्रभु के वचनों की रचना से कश्यप अदिति के ही दशरथ कौशल्या होने का भ्रम हो जाना भी उनके लिये हित कर ही है। और ऐसा प्रतीत हो जाने से, इस अवतार में दशरथ कौशल्या कौन हुये हैं? इस बात की विशेष चिंता करने का भी उन्हें अवसर नहीं रह जाता। तात्पर्य्य यह कि,

'कश्यप अदिति महातप कीन्हा।
तिन कहं मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दशरथ कौशल्या रूपा।
कोशल पुरी प्रगट नर भूपा॥'

इन चौपाइयों में प्रभु की ऐसी वचन रचना भी जिससे मोटी दृष्टि से कश्यप व अदिति ही का दशरथ कौशल्या होना प्रतीत हो जाय, जान बूझ कर साभिप्राय है और प्रायः सर्व साधारण भी आज कल उपरोक्त चौपाईयों में 'ते' शब्द के संकेत पर कुछ गंभीर विचार न करके बहुत ही मोटी दृष्टि से ते शब्द से ऊपर की चौपाई में कहे हुये कश्यप अदिति कोई संकेत समझ लेते हैं, पर गंभीर दृष्टि से ध्यान देने पर आकाश वाणी के तात्पर्याथ के अनुसार वास्तव में ते शब्द का संकेत, 'दशरथ कौशल्या रूप नर भूप' के लिये है, अर्थात् ते दशरथ कौशल्या रूप नर भूप (जो प्रत्येक रामावतार में प्रभु के माता पिता रूप से प्रगट हुआ करते हैं) कौशलपुरी में प्रकट हैं। कहने का अभिप्राय यह कि रामावतार की भूमिका प्रकट हो चुकी है, अब अवतार लेकर उस नर नाटक को प्रारंभ करने की ही देर है।

'तिनके गृह अवतरि हौं जाई।
रघुकुल तिलक सो चारहुं भाई॥

अर्थात् उन्हीं रामावतार की परंपरा के अनुसार मेरे माता पिता रूप से प्रगट दशरथ कौशल्या रूप नर भूप के यहाँ ही चार भाई हो कर अवतार लूंगा।

इस प्रकार उपरोक्त चौपाइयों में किसी प्रकार के प्रमाण रहित कोरे अनुमान, अथवा विलष्ट कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। तात्पर्य्यार्थ को समझने के लिये केवल 'ते' शब्द के संकेत पर थोड़ा गंभीर विचार कर लेना ही पर्य्याप्त है। पर कठिनता तो यह है कि आज कल प्रायः सज्जनों में मानस रामायण के अनन्य बनने की ऐसी चाल चल गई है कि वे लोग मानस रामायण में दिये हुये संकेतों का स्पष्टीकरण करने के लिये, आवश्यकता पड़ने पर भी किसी दूसरे आर्ष ग्रंथ की सहायता लेना ऐब समझते हैं, साथ ही जिस स्थल पर भिन्न २ भाव तथा रस भेद से भिन्न भूमियों के अनुसार, जिस गहराई में यथार्थ तात्पर्य्यार्थ की प्राप्ति होती है, वहाँ तक पहुंचने का प्रयत्न न करके मोटी बुद्धि से ही, रहस्य पूर्ण गंभीर प्रसंगों का भी जिज्ञासुओं को उत्तर दे देने के लिये कुछ न कुछ अवश्य ही कल्पना कर लेते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि प्रसंग के ठीक तात्पर्य्यार्थ तक पहुंचने से वंचित रह कर घाम्बिलास ही हाथ लगता है। दास की समझ में तो ऐसा आता है कि मानस रामायण अथवा किसी भी आर्ष ग्रंथ में कोई प्रसंग ठीक २ समझ में न आवे, तो उसे अन्तर्यामी सत्गुरु प्रभु पर छोड़ देना चाहिये, जब वह उचित समझेंगे, आप से आप तात्पर्यार्थ का ज्ञान करादेंगे, उनका नियम ही है।

ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते।

इसके अतिरिक्त, मोटे विचारों से कुछ न कुछ अवश्य ही तै कर लेने की चेष्टा, प्रभु की आन्तरिक सहायता के मार्ग को ही रोक देने वाली है। अब पाठक वृन्द समझ सकते हैं, कि आकाश वाणी में कश्यप अदिति का नाम आने का अभिप्राय ही दूसरा है, इन नामों के आकाशवाणी में आ जाने से, अवतार हेतु प्रकरण के अनुसार मनु शत रूपा के दशरथ कौशल्या होने में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती। अब आगे–

'नारद बचन सत्य अब करिहौं।
परम शक्ति समेत अवतरिहौं॥'

इस चौपाई से भी लोक संभ्रम में पड़ जाते हैं, क्योंकि नारद-शाप दूसरे कल्प के अवतार का हेतु है, यह बात अवतार हेतु प्रकरण से बिलकुल स्पष्ट है। अतएव इस चौपाई के सम्बन्ध में विचार किया जाता है।

नारद जी के बचन जिनके सत्य करने के लिये आकाशवाणी में कहा गया है निम्नलिखित हैं–

बंचेहु मोहि जवन धरि देहा।
सोइ तनु धरहु शाप मम एहा॥
कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी।
करिहैं कीश सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी।
नारि बिरह तुम होब दुखारी॥

अब ध्यान पूर्वक देखा जाय, तो उपरोक्त तीनों बातों का सम्बन्ध प्रायः प्रत्येक कल्प के रामावतार में रहता है अर्थात् १-नर शरीर का धारण करना २-बानरों की सहायता ३-सीता हरण यह तीनों ही श्रीरामावतार चरित के आवश्यक अंग हैं।

अब नारद जी ने क्रोध में भर कर जो कुछ प्रभु को शाप दिया था, मोह की निवृत्ति हो कर ज्ञान होने पर अत्यंत पश्चात्ताप के साथ 'मृषा हो मम शाप कृपाला' कह कर उन्होंने प्रभु से उस शाप के मिथ्या हो जाने के लिये ही प्रार्थना की, पर प्रभु ने ने 'मम इच्छा कह दीन दयाला' के अनुसार अपनी ही इच्छा सूचित कर शाप को स्वीकार ही किया। और उस हेतु से एक स्वतंत्र कल्प में अवतार धारण कर नारद जी के उस शाप को सत्य किया, जैसा कि नारद मोह की कथा के पश्चात 'एक कल्प यहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार' से ही स्पष्ट है। पर इतने ही पर संतुष्ट न हो कर अपने परम प्रिय भक्त के (जिन के लिये आरण्य कांड में 'बालक सुत सम दास अमानी' कह कर अपना अपूर्व वात्सल्य प्रकट किया है) मुख से निकले हुये कठोर बचनों को स्नेह के भाव से स्वीकार कर युग २ में प्रत्येक रामावतार में उन बचनों को सत्य करने में सुख माना। अतएव इस कल्प में भी 'नारद बचन सत्य सब करिहौं। परम शक्ति समेत अवतरिहौं' कह कर देवताओं के अभीष्ट बन गमन- सीता हरण तथा युद्ध आदि चरित्रों की सूचना दे दी। इससे आकाश वाणी के 'हरषि शोक संदेह' शब्दों की और भी पुष्टि हो गई। क्योंकि आकाशवाणी में उपरोक्त चरित्रों के संबंध में कोई विशेष सूचना न देख कर संभव था, कि 'प्रभु किस प्रकार से असुरों का वध करेंगे?' इस बात की चिंता में फिर भी देवता लोग चिंतित होते। पर उपरोक्त चौपाई से 'प्रभु असुरों का वध किस प्रकार से करेंगे?' यह सारा प्रोग्राम भी संक्षेप से स्पष्ट हो गया, जिससे देवता लोगों का शोक संदेह भली प्रकार दूर हो गया। पुनः–

'हरि हौं सकल भूमि गरुआई।
निर्भय होहु देव समुदाई॥'

कह कर आकाश वाणी का उपसंहार किया। इस प्रकार आकाश वाणी से देवताओं को पूर्णतया धैर्य प्राप्त हुआ। यथा–

गगन ब्रह्म वाणी सुनि काना।
तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥

यह सब आकाश वाणी के गम्भीर तथा 'हरषि शोक सन्देह' होने का रहस्य है।

इस प्रकार से आकाश वाणी के गंभीर भाव का समझ लेने पर किसी प्रकार के संदेह अथवा पूर्वापर विरोध का अवसर नहीं रहता।

—— ——

श्याम–छवि

(रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम)

मोर के मुकुट की विकट छबि पेखि पेखि।
चित्त चंचरीक तेहि मांहि अरुझायो है॥

कारी घुंघरारी लटा डारी जिमि झूम रही।
मेचकता देखि जिय भ्रमर लजायो है॥

दाड़िम दशन भ्रुव बनी हैं कमान जैसी।
देखि मृदु नासिका को शुक शरमायो है॥

लोचन हैं लोल मृग मन्द गति डोल जिमि।
मुख छवि देखि देखि चन्द्रहु लुभायो है॥

भगवान क्यों नहीं मिलते?

[ले० श्री प्रेम-पथ-पथिक]

सभों की एक ही बात है। हर एक [illegible] का प्रश्न है कि 'भगवान क्यों नहीं मिलते?' एक भजनानन्दी कहता है–मैंने इतने दिनों तक भगवान् को पुकारा, इतने कष्टों का सामना किया, हजारों कष्ट सहे पर भगवान् नहीं मिले। क्या सचमुच भगवान् नहीं हैं? क्या भगवान् को भजना पागलपन तो नहीं? क्या मैं सरासर भूल तो नहीं कर रहा हूं? भगवान् का अस्तित्व पागलों की बहक तो नहीं है? और क्या यह विश्वास ही कहीं निर्मूल तो नहीं है? इस प्रकार के प्रश्न प्रायः लोगों के चित्त में हलचल पैदा कर देते हैं। और यदि कोई उनके विश्वास को दृढ़ न करावे तथा उन्हें भगवान् की ओर अग्रसर न करे तो सम्भव है वह समय पाकर नास्तिक बन जायें।

लोगों की यह भूल है कि भगवान को सच्चे हृदय से पुकारा जाये और वह न मिलें। लोगों की यह ना समझी है कि भगवान को स्मरण किया जाये और वह न आयें। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि यदि सच्ची पुकार हो तो भगवान् वायु के वेग से अधिक और हवाई जहाज की चाल से ज्यादे चल कर फौरन से पेशतर भक्त के सामने हाजिर हो जायें। चल कर आने की बात भी अत्युक्ति जान पड़ती है क्योंकि जो घट २ में व्यापक है वह जहां से चाहे, जब चाहे, जिस रूप में चाहे, जिस रंग में चाहे प्रगट हो सकता है। फिर इतने पर भी वह क्यों नहीं दिखाई पड़ते? इसका एक और केवल एक ही उत्तर है और वह

यह है कि उन तक हमारी आवाज नहीं पहुंचती, उन पर हम प्रेम नहीं करते। अच्छा तो यह प्रेम हो कैसे? केवल 'प्रेम करो' कह देने से ही तो काम नहीं चलता, केवल दाल रोटी का नाम ले लेने ही से पेट नहीं भरता। जरा प्रेम का रास्ता भी तो बताओ। जरा उस प्रेमी के दीदार पाने का मार्ग भी तो दिखलाओ।

प्रश्न तो बड़े पते का है। सचमुच इस रहस्य को समझना बहुत आवश्यक है। अच्छा तो प्यारे प्रेम-पथ-पथिको! जरा ध्यान देकर सुनो! अपने शरीर रूपी नौ द्वारों को बन्द कर सुनो। जब तक सांसारिक भोगों का अन्त नहीं होता, जब तक स्त्री, पुत्र, धन सम्पत्ति, मान, अपमान नहीं छूट जाता, जब तक कामिनी कांचन का स्वरूप से त्याग नहीं हो जाता तब तक उसके लिये व्याकुलता नहीं हो सकती। जब तक उसके लिये व्याकुलता नहीं होती तब तक सच्चे और शुद्ध हृदय से उसे पुकार नहीं सकते। और जब तक हमारे करुण क्रन्दन उसके प्रेम के हकदार नहीं हो सकते, जब तक प्रेम नहीं होता तब तक उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता और जब तक प्रत्यक्ष नहीं होता तब तक हृदय की जलन नहीं मिटती और शान्ति तथा सुख कोसों दूर रहता है।

इन बातों से यही प्रकट होता है कि जब तक सांसारिक खट पट नहीं मिटती तब तक भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन चाहना आकाश कुसुमवत् है गूलर में फूल भले ही लग जाये, बांझ को पुत्र भले ही हो जाये और नीम में मिठास भले ही आजाये पर बिना चित्त शुद्ध हुये और सच्चे हृदय से पुकारे वह नहीं मिलते। इसलिये प्यारे भाइयो तथा बहनो! यदि तुम्हारे हृदय में उसके पाने की तनिक भी इच्छा है तो 'सब तज, राम भज' के मूलमन्त्र को भली भांति हृदयङ्गम कर लीजिये। जब तक हमारे हृदय में तनिक भी वासना है तब तक वह नहीं मिलते। जब तक हम दो नावों पर चढ़े हैं तब तक हम भवसागर से पार नहीं हो सकते। सच्ची बात तो यह है कि जब तक हमें अपने बाहु-बल का भरोसा है तब तक वह अहैतुक कृपासिन्धु हमें मदद करने को तैयार नहीं। खुलासा इसका यह हुआ कि जब तक हम संसार से ६३ हैं तब तक उससे हम कोसों दूर हैं और जब हम संसार से ३६ हो जायेंगे वह अविलम्ब हमारे सामने आकर हमारे चिर तृषित नेत्रों को तृप्त कर देगा।

जब श्री राम कृष्ण देव ने देखा कि भगवान् प्रत्यक्ष नहीं होते तो उन्होंने एकान्त में उन्हें व्याकुल हो कर पुकारना आरम्भ किया। उनके न खाने का ठिकाना रहा न सोने का। लोग उन्हें पागल समझने लगे पर उन्हें क्या उनकी अवस्था तो ठीक—

प्रेम दिवाने जो भये, कहें बहकते बैन।
कबहुं मुंह हांसी उठै, कबहुं टपकै नैन॥

की अवस्था हो गई। खाने का भी ज्ञान जाता रहा। जब उनकी व्याकुलता इतनी बढ़ी कि बिना उसके देखे उनका हृदय जल-विहीन मीन के जैसा तड़फड़ने लगा तब कहीं वह नयनाभिराम रामराम को देख जन्म सफल समझ शान्ति पाये।

वाह स्वामी रामतीर्थ! तुमने भी संसार को दिखा दिया कि व्याकुल हो भगवान् के लिये रोना किसको कहते हैं। जब तुम्हारी धर्मपत्नी प्रातः उठती थी उसका पहला काम यही होता था कि वह तुम्हारे तकिये को धूप में डालदे जिससे वह उस तकिये को सुखा सके जो आपके आंखों के आंसू से भीग गये थे जो तुम्हारी आंखों से उसके विरह

में रात को गिरे थे। अतः तुम्हारी आँखें लाल २ और फूली २ दिखाई पड़ती थीं मानो किसी का एकलौता पुत्र मर गया हो और उसकी सारी संपत्ति छिन गई हो। पर यह उपमा भी ठीक नहीं जचती क्यों कि सांसारिक मनुष्यों का दुःख दो चार रोज के बाद कम हो जाता है पर तुम्हारी आँखें तो सावन भादों की नदी बन गई थीं और हिमालय का झरना बन गया था जो कभी सूखता ही नहीं और दिन दूना और रात चौगूना हो जाता था।

मीरा बाई भी धन्य थीं। तुमने भी कृष्ण को पाने के लिये कुछ उठा नहीं रक्खा। तुम्हारी व्याकुलता भी सराहनीय है। युवावस्था रहने पर भी तुमने संसार के अज्ञानी जीवों को यह शिक्षा दी कि एक अबला भी परमात्मा की प्राप्ति के लिये समाज की कुछ भी परवाह नहीं कर, मान अपमान को लात मार, लज्जा को ठुकरा कर और अपने सम्बन्धियों के क्रोध की अवहेलना कर सत्संग, साधु-सेवा तथा भगवद्भजन द्वारा भगवान को प्रत्यक्ष कर सकती है। यह भगवत् के लिये व्याकुलता ही थी जो उसे साधुओं के संग नाचने को बाध्य करती थी। यह व्याकुलता की एक जीती जागती मूर्ति थी। यह उसके बचपन के अभ्यास का फल था तभी तो उस प्रेम दिवानी ने कहा है:—

'अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बई'

हाँ सुना आपने! उसने प्रेम की लता बोई थी। कैसे? आंसुओं के जल से सींच कर। तो क्या आप भी इसी प्रकार भगवान् को नहीं पा सकते? पा सकते हैं और अवश्य पा सकते हैं। आइये पाठकगण! हम आज ही से उसको पाने के लिये कटिबद्ध हो जायें और कम से कम एक घण्टा भी एकान्त में उसे पुकारें।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

चित्रकूट

[ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए०]

भूमि विलोकु रामपद अंकित।
बन बिलोकु रघुबर बिहार थल॥

भाषा द्वारा वर्णन की अपेक्षा फोटो द्वारा उपस्थापित चित्र कहीं अधिक सत्यज्ञान कराता है। उससे भी अधिक स्पष्ट ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से संभव है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् के चरित गोसाईं जी से भगवद्भक्त के सद्भावों से ओत प्रोत रामायण के पद्यमय शब्द चित्रों में कितने जन पढ़ते और भावों को हृदयङ्गम करते मग्न तथा लोट पोट होते रहते हैं। रामायण और विनय पत्रिका पढ़ के पावन भूमि की कल्पना एक बात है चित्रों को देख कल्पना दूसरी बात है। पर प्रत्यक्ष इन्द्रिय गोचर अनुभव सब से न्यारा होता है।

चित्रकूट नाम से सुन्दर तरुलताच्छादित पर्वत शृंगों की कल्पना हुआ करती थी। रेल पर से सुहावने शैल दृष्टि गोचर होते रहते थे 'कामद-मणि कामता कल्पतरु' अथवा 'कामद मे गिरि राम प्रसादा' पढ़ने को मिले थे। चित्रकूट के श्रीकामद नाथ गिरि के दर्शन से नेत्र खुल गये। तीन सहस्र वर्षों से भी पूर्व भगवान् रामचन्द्र जी जिस कामद गिरि को चरणाङ्कित कर पावनता दे गये, उस पर इतने काल में न जाने कितने श्रद्धालु, साधु, महात्मा, ज्ञानी, पण्डित पुण्यशील, धर्म परायण, सामर्थ्यशाली, लक्ष्मी के लाल दर्शक यहां

आये होंगे। सज्जनों से अभिभूत हुए होंगे। और अपने सामर्थ्य निष्ठा अथवा प्रेरणा के द्वारा यहां पर अद्भुत प्रासाद, मन्दिर, आवास, निकेतन देवालय, अट्टालिकायें आदि चहुं ओर बना गये हैं, जिनमें साधु सन्त, महात्मा पुजारी, रक्षक या विक्रेता निवास करते हैं। इन प्रासादों की विशालता, सुन्दरता, पावनता आदि से सजीव जीते जागते चिर काल पोषित हिन्दू धर्म के दर्शन होते। समय २ पर जीर्णोद्धार भी हुआ होगा। क्योंकि ये मन्दिर तीन सौ वर्ष से अधिक प्राचीन कदाचित् ही कोई है।

हिन्दू जनता अपने धर्म को सनातन कहती है। सनातन शब्द का अर्थ है जो सदा से चला आता है। फेर फार, परिवर्तन सम्प्रदाय सभी धर्मों में हुआ ही करते हैं। जैन बौद्ध ईसाई मुसलमान धर्मों के प्रवर्तक का पता है। सब तीन सहस्र वर्ष के भीतर ही ठहरेंगे। सनातन धर्म के पोषक बड़े ही मिलेंगे, ऐतिहासिक प्रवर्तक नहीं।

यमुनातट पर अवस्थित बांदा जिले का राजापुर ग्राम चित्रकूट से दस कोस की दूरी पर होगा। वैराग्य होने के पश्चात् अथवा पूर्व गोसाईं जी न जाने कितनी बार और कितने काल को, कितनी ऋतुओं में चित्रकूट, कामद गिरि के आसपास ठहरे होंगे कि यहां के आस पास के दृश्यों का सजीव वर्णन मनोहर पदों में रामायण, गीतावली आदि पुस्तकों में कर गये हैं। इनके कुछ अवतरण आगे मिलेंगे।

प्रयाग से जबलपुर जाने वाली लाइन पर ६२ मील पर स्थित मानिकपुर स्टेशन से १६ मील पर करवी ४७ मील पर चित्रकूट, और २८ मील पर भरत कूप नाम के स्टेशन हैं। करवी और चित्र कूट स्टेशनों से ५ मील और भरत कूप से ६ मील पर चित्रकूट ग्राम मन्दाकिनी के तट पर बसा है। मन्दाकिनी के उत्तर में सम्प्रति ब्रिटिश राज्य है, और दक्षिणी तट पर महाराजा की नौगांव एजेन्सी है प्रायः चार पाँच सौ गज तक नदी के उत्तर तट पर पक्के घाट बन्धे हैं। पूर्व में पयस्विनी नदी का सङ्गम है। उस स्थान को राघव प्रयाग कहते हैं। मत्तगजेन्द्र का मन्दिर, तुलसीदास का स्थान और पर्णकुटी आदि तट ही पर हैं। पयस्विनी तो सूख जाती है। कई २ पयस्विनी को मन्दाकिनी कहते हैं। मन्दाकिनी भी [illegible] नहीं है। यहां मेले के अवसर पर जल गंदला हो जाने से पीने के योग्य नहीं रह जाता। वाल्मीकीय रामायण में रामचन्द्र जी सीता को दिखलाते हैं कि मृगयूथ के जलपान करने से नदी का जल मलिन हो गया है। नदी तट पर यात्रियों द्वारा क्रय योग्य सामग्री का हाट है। आस पास धर्मशालाएं तथा पंडों के आवास तथा कुछ मन्दिर हैं करवी स्टेशन से ६ कोस उत्तर पूर्व की ओर बेगरेडी ग्राम है इसी के पास लालपुर पहाड़ी पर वाल्मीकि मुनि का आश्रम था अब भी एक मन्दिर बना है। यहीं पर लवकुश का जन्म हुआ होगा। यह पहाड़ी परिक्रमा में छूट गई थी अतः यहां से भगवान् कामद गिरि पर गये। चित्रकूट ग्राम से कामद गिरि एक ही मील पर है मार्ग में कतिपय मन्दिर और आश्रम पड़ते हैं। एक स्थान का नाम पुरानी लंका है। यहां पर कभी लंका काण्ड की रामलीला का अभिनय होता रहा। अक्षय वट आश्रम में अब वट वृक्ष नहीं है। कामद गिरि के नीचे कामता बाजार है। गिरिराज की परिक्रमा नङ्गे पैर करनी होती है गिरिराज के चारों ओर दो फुट चौड़ा पक्का मार्ग परिक्रमा के लिये बना है। गिरिराज पर कोई चढ़ता नहीं। उस पावनभूमि को चरणों से स्पर्श करना धृष्टता

है। भगवान् के चरणों से पवित्र होने के लिये पादुकाएँ लोके भी लक्ष्मण ने न दी ऐसा एक महाराष्ट्र सज्जन के कीर्तन में सुना था। स्वयं सीता जी तथा लषणलाल जी श्रीभगवत्पादपूत भूमि पर पैर नहीं धरते थे।

प्रभु पद देख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीष राम पद अंक बराये।
लखन चलहिं मग दाहिन बायें॥
धन्य सो शैल देश बन गाऊं।
जहं जहं जाहि धन्य सो ठाऊं॥
परसत सुदुल चरण अरुणारे।
सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
ये बिचरहिं महिबिनु पदत्राना।
रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
परसि राम पद पदम परागा।
मानति भूमि भूरि निज भागा॥

कामदगिरि की परिक्रमा का मार्ग प्रायः ५ मील लम्बा है। इस मार्ग के दोनों ओर मन्दिर, भवन, कूप, ताल कुण्ड बराबर मिलते जाते हैं। भरत जी से भेंट का स्थान भी मिलता है। बनाने वाले की श्रद्धा तथा सामर्थ्य के अनुसार ये विशाल प्रासाद वा साधारण आवास हैं, इनमें पुजारी रक्षक आदि निवास करते हैं। जहाँ तहां मिठाई खोवा तथा पुस्तकादि बेचने वाले भी पाये जाते हैं। यद्यपि भगवान् की तथा मारुति से भेंट चित्रकूट से बहुत आगे चलकर हुई है तथापि यहां के अनेक मन्दिरों में हनुमान जी की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। यह बड़े की सेवा का मीठा फल है। न केवल मूर्तिमान् मारुति बरन सशरीर अरुण मुख तथा कज्जल मुख विशाल लाँगूल धारी हनुमान जी इस गिरिराज पर तथा दस मील की दूरी पर आस पास बहुतायत से पाये जाते हैं। इनकी सत्ता कदाचित् हिन्दू तीर्थों की विशेषता समझनी चाहिये।

तीर्थ स्थान में महात्मा भी खोजने से मिल सकते हैं। कहा है 'साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न बने बने,' हमें एक सज्जन के सहयोग से बाबा बन्दराम जी से जो सूरदास कहलाते हैं भेंट का अवसर मिल गया। वे किसी सज्जन से वार्तालाप में उपदेश दे रहे थे। सज्जनों की अपनी बात ही उपदेश पूर्ण कही जाती है। वही यहाँ पाया गया। बात चीत में उनने विनय पत्रिका के कतिपय पद्य कण्ठ कह के व्याख्या कर डाली। कहने को तो सूरदास थे, पर स्मरण शक्ति तथा बुद्धि विवेक विचित्र था। अभिमान का नाम न था। संस्कृत में निष्णात थे। एक श्लोक उनने राग पूर्वक पढ़के टीका कर दिया था। वह यह है।

तद्वाग्विसर्गो जनताघ संप्लवो,
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोंकितानि,
यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः।

वह वाणी जनता के पाप का शमन करने वाली होती है जिसमें भगवान् के यशोङ्कित नाम आते है। क्योंकि साधु जन उसे कहते सुनते और गाते हैं।

चित्रकूट से मन्दाकिनी पार करके डेढ़ कोस चलने पर एक बन मिलता है। उस बन में अथवा सर्वत्र बनों में मार्ग काटों, वृक्षों के बीच से टेढ़े मेढ़े, खड़बीहड़ पथरीले नाले, आदि पर से होता हुआ जाता है। भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ प्रकार के वृक्ष मिलते हैं कितने वृक्षों के नाम ही विदित न हो सके। बेर, रौंझा, पारिजात, बास, कैथ, औंदला, इंगुदी, खंभार, महुआ, तेंदु, विजयसार,

अंकोल धव, कोहा, प्यार, मेवा, कटहल, लोध, नीम, साखू, बैर, अशोक, कदम्ब, अनार, करौंदा मकोय, केला, सुगन्धरा, कनेर, सागौन, रक्त चन्दन आदि वृक्ष जहां तहां बहुतात से भरे पड़े थे।

ऐसे ही वृक्षों तथा गुल्म लताओं से आच्छादित होने के कारण इस पर्वतमाला का नाम चित्रकूट पड़ा है। महर्षि वाल्मीकि का वर्णन देखिये:-

गिरेः सानूनि रम्याणि चित्रकूटस्य पश्यत।
शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशाला शतशोऽभितः॥
बहुला बहुलैर्वर्णैः नीलपीतसितारुणीः।
निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशन शिखा इव॥
ओषध्यः स्वप्रभा लक्ष्म्या भ्राजमाना सहस्रशः।
केचिदेव शिला भान्ति केचिदुद्यान संनिभाः॥
पश्य द्रोण प्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण।
मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे॥
केचिद्रजत संकाशाः केचित्क्षतज संनिभाः।
पीत माञ्जिष्ठ वर्णाश्च केचिन्मणिवर प्रभाः॥
जल प्रपातैरुद्भेदैः निष्पन्दैश्च क्वचित् क्वचित्।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः॥

अर्थात् चित्रकूट पर्वत के रमणीय शिखर देखिये। चारों ओर सैकड़ों वृहत् शिलाएं शोभा दे रही हैं। उनके वर्ण कहीं नीले, पीले, श्वेत या लाल दीखते हैं। रात्रि में तो कोई शिखर जलती अग्नि के समान प्रकाशमान होते हैं। पर्वतों में सहस्त्रों औषधियां अपने प्रकाश से जगमगा रही हैं। कहीं शिलाएं चमक रही हैं। कहीं उद्यान कीसी छटा छाई है। पहाड़ों में मधुमक्खियों के छत्ते जहां तहां लटक रहे हैं। उनमें चार २ पसेरी मधु होगा। कोई शिला चांदी सी चमकती है, कोई लाल घावसी झलकती है, कोई पीली कोई मजीठ या मणि वर्ण की शोभा दिखा रही है। झरनों के झरने से शब्द होता है। हाथी जहां तहां मद चुआ रहे हैं। कहीं भूमि फोड़ सोते बह रहे हैं। कहीं शून्य शान शान्ति विराजती है नीचे लिखे गोसांई जी के वर्णन इधर उधर से चुने गये हैं:-

फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना।
मंजु बलित बर बेलि बिताना॥
बिटप बेलि तृण अगनित जाती।
फल प्रसून पल्लव सब भांती॥
बेलि विटप तृण सफल सफूला।
सब समाज मुद मंगल मूला॥
बेलि बिटप सब सफल सफूला।
बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥
दल फल मूल कन्द विधि नाना।
पावन सुंदर सुधा समाना॥
पुण्य जलाशय भूमि विभागा।
खग मृग तरु तृण गिरि बन भागा॥
शैल सुहावन कानन चारु।
करि केहरि मृग विहंग विहारु॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं।
मनहु निशान विविध विध बाजहिं॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा।
देखि महिष वृष साज सराहा॥
करि केहरि कपि कोल कुरंगा।
बिगत बैर विहरहिं सब संगा॥
अलिगन गावत नाचत मोरा।
जनु सुराज मंगल चहुं ओरा॥
चक चकोर चातक शुक पिक गन।
कूजत मंजु मराल मुदित मन॥
नील कण्ठ कल कण्ठ शुक चातक चक्क चकोर।
भांति भांति बोलहिं विहग श्रवन सुखद चित चोर॥
सरनि सरोरुह, जल विहग कूजत गुन्जत भृंग।
बैर विगत विहरत विपिन मृग विहंग बहु रंग॥

आइ रहे जब तें दोउ भाई।
तब तें चित्रकूट कानन छवि अधिक अधिक अधिकाई ॥
उकठेउ हरित भये जल थलरुह नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत पलुहत विटप बेलि अभिमत सुखदाई ॥
कूजत विहग मंजु अलि गुंजत, जात पथिक जनु लेत बुलाई।
त्रिविध समीर नीर झर झरननि जहं तहं रहे ऋषि कुटी बनाई
शीतल सुभग शिलनि पर तापस करत जोग जप तप मनलाई
भए सब साधु किरात किरातिनि राम दरस मिटि गइ कलुषाई

बंजुल मंजु बकुल कुल सुरतरु ताल तमाल।
कदलि कदम्ब सुचम्प पाटल पनस रसाल ॥
झिल्लि झांझ झरना डफ नव मृदंग निशान।
भेरि उपंग भृंग रव, ताल कीर कलगान ॥

चित्र कूट से २ कोस आरण्य मार्ग चलने पर पर्वत मिला प्रायः ३०० सीढ़ियां चढ़ने पर कोटि तीर्थ नामक स्थान पर पहुंचते हैं कोटि तीर्थ से दो कोस पश्चिम में एक रम्य तपोवन बांके सिद्ध नामक है। कोटि तीर्थ पर से दूर स्थित चित्रकूट और आस पास रम्य हरित पर्वत मालाएं अत्यन्त चित्ताकर्षक दीखती हैं! वहां पर एक झरना है। समीप ही एक कुण्ड तथा एक मन्दिर है। श्री भगवान के कामद गिरि पर सुशोभित होने पर अनेक देवता मुनि वनचर भेंट को आये और यहीं ठहरे होंगे।

पुराण गाथा

पुराण माहात्म्य

[ले० श्री स्वामी भोले बाबा]

एक बार नैष्ठिक ब्रह्मचारी, परम योगी, भागवत् शिरोमणि, ब्रह्मा जी के मानस पुत्र, देवर्षि नारद लोकहितार्थ भूमंडल में विचरते हुये नैमिषारण्य में, जहां शौनकादि ऋषि कलियुग के दोषनिवारणार्थ दीर्घ सत्रकर रहे हैं पहुंचे। शौनकादि ऋषियों ने अर्घ्य, पाद्य, आचमन आदि षोडशोपचारों से देवर्षि को सुन्दर, उच्च, सिंहासन पर बैठा कर, प्रेम पूर्वक उनका पूजन किया। जब वे सुख पूर्वक आसन के ऊपर विराजमान हो गये, तब सब ऋषियों ने कुल वृद्ध, आयु वृद्ध, विद्या वृद्ध तपोवृद्ध शौनक जी को आगे करके इस प्रकार प्रश्न किया:-

शौनक-हे देवर्षे! आप धन्य हैं, जो समाधि का भी सुख त्याग करके वीणा बजाते हुए और भगवद्गुणों का गान करते हुए समस्त लोक के हितार्थ सर्वत्र विचरते रहते हैं, सचमुच आप, ब्रह्मनिष्ठ भागवतों का जीवन ही सफल है, जो अपने को प्राप्त हुए भी सब भोगों को छोड़ कर परोपहित के लिये सर्वदा सर्वत्र विचरते रहते हैं। संसारियों को अर्थात् जो मंद बुद्धि स्त्री, पुत्र, धन, धाम, कामना नामता आदि में फंसे हुए देह व्यवहार को ही सच्चा मानने वाले हैं, इन को आप का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ ही नहीं किन्तु असम्भव है, जब बड़े पुण्य का उदय होता है, तब आप के दर्शन होते हैं। आज हम सब का बड़ा सौभाग्य है, जो हम पंचरात्र, परम हंस परिव्राजक उपनिषद् का प्रचार करने वाले भगवदवतार को प्रत्यक्ष देख रहे हैं, नहीं तो हम मृत्युलोक के रहने वाले कहां? और आप योगेश्वर जगत्कर्ता ब्रह्मा के पुत्र कहां?

हे ब्रह्मन्! हम सब ने सूत जी के मुख से अठारह पुराण, अठारह उपपुराण, रामायण, महाभारत इतिहास और धर्म शास्त्र आदि सब शास्त्र श्रवण किये हैं, फिर भी हमारी तृप्ति नहीं होती ज्यों २ उनको सुनते हैं, त्यों २ विशेष आनन्द आता है, जैसे हाथी ज्यों २ जल में स्नान करता है,

त्यों २ उसे आनन्द आता है, और वह जल में से निकलना नहीं चाहता, इसी प्रकार हमारा मन रूपी हाथी पुराणों के सुनने से अघाता नहीं है, किंतु ज्यों २ अधिक सुनते हैं, त्यों २ अधिक तृष्णा बढ़ती है। भला! अमृत रूप भगवत्कथाओं के सुनने से कौन चतुर पुरुष अघा सका है। कोई कथामृत के स्वाद को न जानने वाला मन्द बुद्धि दो पैर का पशु ही भले ही अघा जाय? अन्य तो अघायेगा नहीं। भगवत्कथा रूप अमृत का पान करने के लिये ही हम सब एकान्त स्थान में दीर्घ सत्र के मिष से बैठे हुए हैं! आज मुकुन्द भगवान् की हमारे ऊपर अपूर्व कृपा है, जो उन्होंने आप सर्वज्ञ सर्ववित्, परोपकारी को यदृच्छा ही हमारे स्थान पर भेज दिया है, इससे हम जानते हैं कि केशव भगवान् की हम सब के ऊपर असीम कृपा है! सच कहा है "कि बिनु हरि कृपा मिलें नहीं सन्त"! करुणा कर, केशिहा हरि ने इस भव-सागर से पार करने के लिये हमारे पास आप कर्णधार भेज दिये हैं इसलिये हम सब आपके श्रीमुख से समस्त पुराणों का सार सुनना चाहते हैं, यह भी हम जानते हैं कि जैसे मंत्रों को भगवत्तत्व वर्णन करने में आलस्य नहीं है, ऐसे ही सन्तों को भी भगवद्गुण सुनाने में श्रम नहीं होता अत्यन्त मोद होता है, इसलिये आप हम सब का मनोरथ पूर्ण कीजिये! ऐसी हमारी प्रार्थना है।

नारद जी की तो प्रतिज्ञा है ही कि यदि मैं कलियुग में जन २ में और घर २ में भक्ति का प्रचार न कर दूं, तो मैं हरिदास नहीं, शौनकादिक के भगवत्कथा सम्बन्धी भक्तिज्ञान वैराग्य युक्त वचन सुन कर जैसी किसी पुत्र प्राप्ति की आशा से निराश, वृद्ध चक्रवर्ती महाराजा के घर में वृद्धावस्था में अपने समान शीलगुण सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ हो, ऐसी प्रसन्नता हुई, शौनकादिक का उत्साह बढ़ाते हुए नारद जी इस प्रकार कहने लगे-

नारद-हे ऋषियो! आपको भगवत्कथामृत में ऐसा अपूर्व प्रेम है, इसलिये आप धन्य हैं! आप वर्षों से भगवत्कथामृत का कर्णपुटों द्वारा पान कर रहे हैं, फिर भी आप अघाते नहीं, सर्वदा निरन्तर पीते ही रहें, ऐसी आप की उत्कट इच्छा रहती है, इसलिये आप बारम्बार धन्य हैं! जो मूढ़ भगवच्चरित्र पीयूष पीने से अघा जाय, इसने निश्चय कथा का रस जाना ही नहीं है। आप भाग्यवानों ने कथा का रस निश्चय पहिचाना है, तभी तो कथा रस पान करने से अघाते नहीं हैं। जो पुण्य कीर्ति वाले जनार्दन भगवान् के सच्चे अनन्य भक्त हैं, वे पवित्र चरित्र सुनने और गाने में इतना प्रेम करते हैं कि चक्रवर्ती राज्य, इन्द्रपद और ब्रह्मलोक के आधिपत्य की तो बात ही क्या है, मोक्ष पद की भी इच्छा नहीं करते! सनकादिक ने समाधि सुख छोड़ कर सात दिन तक मुझे भागवतामृत का पान कराया था, शुकदेव जी ने एकान्त वन में से आकर अपने पिता व्यास जी से भागवत पढ़ी थी और राजा परीक्षित को समस्त ऋषि मुनियों के सामने सात दिन तक सुनायी थी, शिव जी तो कैलास में पार्वती जी को निरन्तर भगवच्चरित्रामृत सुनाते रहते हैं। काकभुशुंडि नीलगिरि पर्वत पर पक्षीवेष धारी ऋषियों को राम कथा सुनाते रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जैसा सुख भगवद्गुण श्रवण कीर्तन में है, वैसा सुख ब्रह्मलोक में भी नहीं है।

हे ऋषियो! मैं पूर्व कल्प में उपबर्हण नाम का गंधर्व बहुत ही सुन्दर रूप वाला और गान विद्या में प्रवीण था। एक बार विश्वसृज के यज्ञ में स्त्रियों के सहित गान करता हुआ चला गया।

उन्होंने मुझे स्त्रियों सहित देख कर शाप दे दिया। तब मैं एक शूद्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ। मेरी माता एक ब्राह्मण की दासी थी। जब ब्राह्मण के यहां ब्रह्म निष्ठ ऋषि चातुर्मास्य व्यतीत करने को ठहरे, तो मैं उनकी सेवा में नियुक्त किया गया। ब्रह्मनिष्ठ सन्त भगवत्कथा का कीर्तन किया करते थे और मैं यद्यपि पांच वर्ष ही का था, फिर भी एकाग्र मन से कथा सुना करता था। मुझे शान्त और कथा प्रेमी देख कर चलते समय ब्रह्मनिष्ठ सन्तों ने ब्रह्मतत्व का उपदेश दिया। मैं ब्रह्मतत्व का अनुसंधान करने से इस जन्म में ब्रह्मा जी का पुत्र हुआ हूं। कैटभारि हरि के चरित्रों में मेरी ऐसी प्रीति है कि मैं वीणा बजाता हुआ और हरि चरित्रों का गान करता हुआ विचरता रहता हूं। यद्यपि मैं दक्ष और जरा राक्षसी के शाप के कारण दो मुहूर्त से अधिक त्रिलोकी में ठहर नहीं सक्ता, फिर भी त्रिलोकी से ऊपर अथवा जहाँ हरिकथा का कीर्तन, श्रवण होता है, वहां अपनी इच्छानुसार ठहर सक्ता हूं, क्योंकि त्रिलोकी से ऊपर और भगवत्कथा के स्थान पर शाप का प्रभाव नहीं चलता। आप सब को मैं भगवत्कथापीयूषमय पुराणों का सार यहां कुछ दिन ठहर कर सुनाऊंगा, प्रेम पूर्वक सुनाऊंगा।

हे शौनक! जीने को तो वृक्ष भी जीते हैं, सांस तो धौंकनी भी लेती ही है, पांचों इन्द्रियों के भोग तो पशु पक्षी सभी भोगते हैं, यदि सुर दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर इतना ही किया, तो वृक्ष, धौंकनी, पशु, पक्षी से मनुष्य में विशेषता ही क्या हुई? जिन कानों ने हरिकथापीयूष का पान किया, वे ही कान सफल हैं, नहीं तो सर्प के बिल के समान हैं, जिस नेत्रों ने भगवत् और भगवत्भक्तों के दर्शन किये, वे ही नेत्र सच्चे नेत्र हैं, नहीं तो मोर के पंख के समान हैं, जिस जिह्वा ने भगवत्कथारस का स्वाद लिया, वह ही जिह्वा रस भरी है, नहीं तो निरस ही है, जिस नासिका ने चक्रधारी भगवान् की वैजयन्ती माला की सुगंध ली, वह ही नासिका उत्तम है, नहीं तो व्यर्थ ही है, जिस त्वचा ने भगवत् और भगवद्भक्तों के अंग का स्पर्श किया, वह ही त्वचा बड़भागिनी है, नहीं तो भाग्य हीन ही है। हे शौक! हरिहेतु दान देने से हाथों की शोभा है, कटक कंकण से हाथ शोभा नहीं देते, जो वाणी हरिचरित्रामृत का गान करती है, वह ही वाणी सार्थक है, नहीं तो मेंढक की वाणी के समान निरर्थक ही है, जो पैर भगवान् के तीर्थ और मन्दिरों में जाते हैं, वे ही पैर सार्थक हैं, नहीं तो निरर्थक ही हैं, विद्वानों का कथन है:-

चौ० हरिचर्चा बिनु जावे जो दिन।
निश्चय दुर्दिन जानो सो दिन॥
कृष्ण शरण बिनु बीते जो क्षण।
उस क्षण के हित करिये रोदन॥

हे ऋषियो! अब मैं पुराण के लक्षण बताता हूं, ध्यान देकर सुनिये-सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय, ये दश पुराण के लक्षण हैं। अव्याकृत यानी प्रकृति के गुणों में क्षोभ होने से महत्तत्व की उत्पत्ति होती है, महत्तत्व से सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है, सात्विक अहंकार से देवता, राजस अहंकार से इन्द्रियां और तामस अहंकार से पाँच तन्मात्रा यानी पांच सूक्ष्म महाभूत उत्पन्न होते हैं, इन सब की उत्पति का नाम सर्ग है, इसको कारण सृष्टि भी कहते हैं। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज इसी प्रकार ईश्वर के अनुग्रह से पूर्व कर्मों की

वासनाओं से महत्तत्वादि के एकत्र हो जाने से कार्य रूप चराचर प्राणियों की उत्पत्ति होती है, इस उत्पत्ति का नाम विसर्ग है। सामान्य रूप से थर प्राणियों के अचर प्राणी भोजन हैं और चर भी हैं, उनमें से कुछ तो मनुष्यों की कल्पना से किये हुए हैं और कुछ शास्त्र की विधि से हैं। इस जीविका का नाम वृत्ति है। युग युग में वेद धर्म के द्वेषियों को मारने के लिये और वेदधर्म की रक्षा करने के लिये अच्युत भगवान् तिर्यक्, मनुष्य, ऋषि अथवा देवताओं में अवतार लेते हैं, इसका नाम विश्व की रक्षा है। मनु, मनु के पुत्र, देवता, सुरेश्वर, ऋषि और हरि के अवतार ये छःओं जितने काल तक अपने अपने अधिकार के अनुसार व्यापार करते हैं, उस काल का नाम मन्वन्तर है। जो राजा ब्रह्मा के साथ उत्पन्न होते हैं, उनके वंश का त्रैकालिक वर्णन वंश कहलाता है। वंश के वंशधारियों का चरित्र वंशानुचरित कहलाता है। इस जगत् के स्वाभाविक नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यंतिक चार प्रकार के प्रलय को विद्वान् संस्था कहते हैं। इस जगत के सर्गादि का निमित्त जीव है, उस जीव को हेतु कहते हैं। अविद्या से कर्म कारक कर्मकर्ता इन दो से जीव की निमित्तता है यानी जीवों के अदृष्ट के कारण से विश्व के सर्ग आदि होते हैं। कोई कोई अव्याकृत यानी ईश्वर को जो जगत् का कारण कहते हैं; वह उपाधि की प्राधान्यता से कहते हैं और जीव को चैतन्यता की प्राधान्यता से विश्व का कारण कहा है। जाग्रत में विश्व, स्वप्न में तैजस, सुषुप्ति में प्राज्ञ ये तीन जीव की मायामय वृत्तियां हैं, इन तीनों वृत्तियों में जिस का साक्षी रूप से अन्वय है और समाधि में जिसका व्यतिरेक है और जो संसार की प्रतीति और बाध का अधिष्ठान है, उस ब्रह्म का नाम अपाश्रय है। अथवा जैसे घटादि पदार्थों में मृत्तिकादि द्रव्य मिले हुए और न मिले हुए भी होते हैं, क्योंकि पदार्थों के बाहर भी होते हैं और घटादि नाम रूपों में सत्ता मात्र होते हैं, इसी प्रकार गर्भाधान से लेकर मरण पर्यन्त देह की नव अवस्थाओं में जो साक्षी रूप से और अधिष्ठान रूप से अभिन्न और भिन्न रहता है, वह अपाश्रय है। इस दसवें अपाश्रय की विशुद्धि के लिये ऊपर के नव लक्षण महात्माओं ने कहे हैं। जब मनुष्य सर्गादि का मायामय रूप से अनुसंधान करता है, तब चित्त स्वयं ही अथवा योग के द्वारा विराम को प्राप्त हो जाता है और विक्षेप का अभाव होने से वह मनुष्य ब्रह्म की आत्मा को जान जाता है, तब अविद्या आदि संसारी वृत्तियां निवृत्त हो जाती हैं।

हे ऋषियो! अब आप समझ गये होंगे कि पुराणों में मनु आदि की कथाओं द्वारा भक्ति रस से युक्त ब्रह्म तत्व के समझाने का सर्वज्ञ ऋषि मुनियों ने प्रयत्न किया है। उनके पढ़ने से ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति तो होती ही है, साथ में व्यवहार की कुशलता, वाक्यचातुरी, सब प्रकार की लौकिक विद्यायें भी आ जाती हैं। इन पुराणों का अध्ययन करने वाला जहाँ कहीं जाता है, मान पाता है, कैसा भी कष्ट आन पड़े, तो भी व्याकुलचित्त नहीं होता, संसार में व्यवहार करता हुआ भी कमल पत्र के समान निर्लेप रहता है, निर्लेप रहने से सर्वदा शान्त रहता है। सारांश यह है कि जब तक जीता है, सुखपूर्वक जीता है और देह त्यागने के पीछे विष्णु के परम धाम को प्राप्त होता है। पुराणों का माहात्म्य शेष, शारदा भी वर्णन नहीं कर सके, तो मनुष्य तो कह ही कैसे सक्ता है।

हे ऋषियो! पुराणों में एक अपूर्वता और भी है कि मूढ से मूढ और विद्वान् से विद्वान् भी दोनों को ही इनके पढने में विनोद होता है। इनमें ऐसी २ रोचक कथायें हैं कि जिनके पढने से सभी का मन प्रसन्न होता है और प्रसन्न होने से एकाग्र हो जाता है। गीता में भगवान् का वचन है कि प्रसन्न मन शीघ्र ही ठहर जाता है और जहां मन ठहरा कि परम शान्ति प्राप्त हुई। आज कल के मनुष्यों का मन इसी कारण से स्थिर नहीं होता। इन पुराणों के पढ़ने से तुरन्त ही पुरुष को सत्यासत्य का विचार हो जाता है और सत्यासत्य का विचार होते ही मन स्थिर हो जाता है और स्थिर मन में मुकुन्द भगवान् का अविर्भाव हो जाता है, अन्तर्यामी भगवान् के प्रकट होते ही मनुष्य को इसलोक की, परलोक की और मोक्ष की प्राप्ति भी दुर्लभ नहीं है।

पाठक! नारद जी के कथन का सार यह है—

कुं-भवसागर से तारने, ऋषि मुनि रचे पुराण।
पढें पढावें चतुर नर, निश्चय हो कल्याण॥
निश्चय हो कल्याण, गान भगवद्गुण करिये।
मारें बारम्बार, विषय सर्पों से डरिये॥
भोला! तजदे भोग, योग कर नट नागर से।
मरे न बारम्बार, पार हो भव सागर से॥

प्राप्ति स्वीकार

हमारे पास गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित आदर्श भक्त, भक्त सप्त रत्न, भक्तसुकुम, भक्त चन्द्रिका तथा विष्णु पुराण यह पांच पुस्तकें आई हैं। पहले की चार पुस्तकों में आदर्श भक्तों की भक्ति वर्धक तथा शिक्षा प्रद कथाएं हैं। यह पुस्तकें प्रत्येक नर नारी के पढ़ने योग्य हैं मूल्य प्रत्येक का ।=) है। प्रत्येक भक्त की कथा के साथ में सुन्दर रंगीन चित्र भी दिया गया है।

विष्णु पुराण—संस्कृत साहित्य में विष्णुपुराण एक अद्वितीय ग्रन्थ है। अभी तक हिन्दी में इस का कोई भी ऐसा सुन्दर अनुवाद प्रकाशित नहीं हुवा था। गीता प्रेस ने इसे प्रकाशित करके हिन्दी साहित्य का बहुत ही उपकार किया है। ग्रन्थ में मूल श्लोकों के साथ सुन्दर हिन्दी का अनुवाद है। इसमें आठ सुन्दर तिरंगे चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल २॥)

भजन

विमल विमल अनहद धुनि बाजे,
समुझि परे जब ध्यान धरै॥ टेक॥
कासी जाय कर्म सब त्यागे,
जरा मरन से निडर रहै।
विरले समुझि परै वह गलिया,
बहुरन प्राणी देह धरै॥ १॥
किंगरी संख झांझ डप बाजै,
अरुझा मन तहं ख्याल करै।
निरंकार निर्गुण अविनाशी,
तीनलोक उजियार करै॥ २॥
इंगला पिंगला सुखमन सोधो,
गगन मण्डल में ज्योति बरै।
अष्ट कंवल द्वादश के भीतर,
वह मिलने की जुगत करै॥ ३॥
जीवन मुक्ति मिले जेहि सतगुरु,
जन्म जन्म के पाप हरै॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
धीरज बिना नर भटक मरै॥ ४॥

२

डगर मोरी छांडो लला,
बिंध जाओगे नैनन में ॥ टेक ॥
भूल जाओगे सब चतुराई,
जो मरूंगी सैनन में ॥ १ ॥
जो तेरा जी चाहे होरी खेलन को,
ले चलो कुञ्जन में ॥ २ ॥
मोतिया बेला राय चमेली,
झुक रही आंगन में ॥ ३ ॥
चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छबि,
लग रही तनमन में ॥ ४ ॥

३

मथुरा तीन लोकते न्यारी,
जामे जन्मे कृष्ण मुरारी ॥ टेक ॥
जा दिन जन्म लियो जदुराई,
घर २ ब्रज में बटत बधाई ।
मातपिता की बन्ध छुड़ाई,
अधम पूतना मारी ॥ १ ॥
गोपिन के याने चीर चुराये,
नाना भांतन ख्याल मचाये ।
दधि माखन के चोर कहाये,
नर ते बन गये नारी ॥ २ ॥
असुरन को दल संहारयो,
नाग नाथ रेती में डारयो ।
गोवर्धन याने नख पै धारयो,
डूबत ब्रज उबारी ॥ ३ ॥
केश पकर के कंस पछारयो,
उग्र सैन को राज संभारयो ।
हमें छोड़ द्वारका पधारयो,
छोड़ी है राधा प्यारी ॥ ४ ॥
कुब्जा सौत कंस की दासी,
करी जाय पटरानी खासी ।
घासीराम गोवर्धन वासी,
ब्रज की सुरत बिसारी ॥ ५ ॥

४

सूवा चल या बन को रसलीजै ॥ टेक ॥
जा बन कृष्णनाम अमृत रस, श्रवण पात्र भर पीजै ॥
को तेरो पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो ।
काल मंझार ले जैहै तोको, तू कहे मेरो मेरो ॥
हरि नाना रस मुक क्षेत्र चल तोको दिखराऊं ।
सूरदास साधन की संगत, बड़े भाग्य जो पाऊं ॥

५

शोभा सदन बदन दोऊ देखे ॥ टेक ॥
आलस अंग अंग निशि जागे,
भरे विनोद अपार विशेखे ॥ १ ॥
भूषण वसन मणिन हारावली,
लालिन नैन काजर छबि देखे ॥ २ ॥
रसिक खुशाल विलोकन या छबि,
राधावर सुख सार विशेखे ॥ ३ ॥

६

दर्श मोहे काहे दो रघुबीर ॥ टेक ॥
सांची बात कहत नहीं मासे, जैसे बाधूं धीर ॥
सांची कहूं भजन नहीं जानत, पालूं सदा शरीर ॥
काहा कहूं दर्शन बिन तुमरे, कब हरिहो भव भीर ॥
कपटी कुटिल जानकर मोको, निठुर भये वे पीर ॥
अब कहा रे करो बनवारी, सन्तन पड़ गई भीर ॥

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता ... मूल्य ॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ... " ।=)
३. गीता मूल (मोटा टाइप) ... ... मूल्य नित्य पाठ
४. वेदोपनिषद् ... ... ।=)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ... ... " -)।
६. ज्ञानधर्मोपदेश ... ... " -)॥।
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह ... " =)॥
८. सत्य शब्द संग्रह गुटका) ... ... " ।)
९. सत्य शब्द संग्रह ... ... " ॥=)
१०. शब्द सदाचार संग्रह ... ... " -)॥।
११. शब्द सार संग्रह ... ... " -)।
१२. शब्दसंग्रह ... ... " -)॥
१३. सारसंग्रह ... ... " ।)
१४. भाषा फक्किका प्रकाश ...
१५. मनुस्मृति सार ... ...
१६. भक्ति चिन्तामणि ... ... " =)
१७. भगवद्भक्तांक ... " ।≡)
१८. भगवदंक ... ... " ॥=)
१९. गवांक ... ... " ॥।)
२०. महात्मांक ... ... " १)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट ... ... " १)

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।